विश्वगाथा

वर्ष : 1
अंक : 2
सितंबर-नवंबर : 2013

संपादक : पंकज त्रिवेदी

डॉ. सुधा ओम ढींगरा, डॉ. लालित्य ललित,
डॉ. विमलेश शर्मा, हिमकर श्याम,
डॉ. सुनीता, डॉ. रमा शंकर शुक्ल,
मीना पाठक, समीर लाल, इंदु सिंह,
केशव मोहन पण्डेय, रश्मि प्रभा,
त्रिलोकसिंह ठकुरेला, भावना लालवाणी
और अन्य

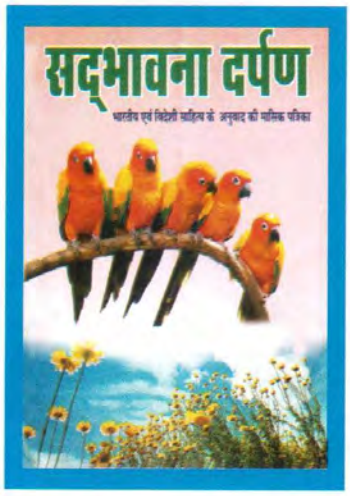

संरक्षक : रोशनलाल अग्रवाल

प्रधान संपादक : कृष्णप्रसाद

प्रबंध संपादक : गुरबीरसिंघ चावला

संपादक

गिरीश पंकज

परामर्श - मंडल

डा. प्रेम जनमेजय, डा. बालेंदुशेखर तिवारी

डा. कमलकुमार, मनोहर पुरी, डा. तिप्पे स्वामी, डा. आरसु

सहयोग

डा. लालित्य ललित (दिल्ली), अमरचंद मीणा (राजस्थान),

मधुसूदन थपलियाल (उत्तरांचल), इन्दिरा किसलय (महाराष्ट्र),

अरुणकुमार झा (झारखंड), डा. मंजुला गिरीश उपाध्याय,

डा. सुधीर शर्मा, सतीश उपाध्याय, मुमताज, ललित शर्मा,

अरुण दुबे, जयप्रकाश मानस, हेमंत पाणिग्रही, आदेश ठाकुर,

(छत्तीसगढ़)

मुल्य :

एक प्रति : 20 रुपए

आजीवन - (व्यक्तिगत) 2500 रूपये

कार्यालय

28 प्रथम तल, एकात्म परिसर, रजबंधा मैदान, रायपुर 492 001

जी-31, नया पंचशील नगर, रायपुर-492 001

दूरभाष : 0771-2427100

मोबाईल : 94252-12720 (संपादक)

ई-मेल : Girishpankaj1@gmail.com

ब्लॉग : http://sadbhawandarpan.blogspot.com

वर्ष - 1 (सितम्बर-नवंबर) 2013 अंक - 2

पंकज त्रिवेदी
संपादक
✽
सुभाष चंदर
सलाहकार संपादक
✽
अर्चना चतुर्वेदी
सह संपादक
✽
सौरभ पाण्डेय
डॉ. सुधा ओम ढींगरा
सहयोगी
✽
मुखपृष्ठ-कोपी राईट
बिपीन सोनी
✽
वार्षिक सदस्यता :
200/- रुपये
5-वर्ष : 1000/- रुपये
(डाक खर्च सहित)
इस अंक का मूल्य
50/- रुपये
✽
सम्पादकीय कार्यालय
विश्वगाथा
ॐ, गोकुलपार्क सोसायटी,
80 फीट रोड,
सुरेन्द्रनगर 363002
गुजरात
✽

अनुक्रम

आपके पत्र			02
संपादकीय	हमारा रिश्ता शब्द से है और शब्द ब्रह्म है	पंकज त्रिवेदी	03
आलेख	प्रेमचंद की कहानियों और उपन्यास के पात्र सदा ज़िंदा रहेंगे	डॉ. सुधा ओम ढींगरा	04
	साहित्य की थाती राजस्थानी भाषा और पर्यटन	डॉ विमलेश शर्मा	07
	उत्तराखंड आपदा	आरती शर्मा	08
	षड्यंत्रो का शिकार है हिन्दी	हिमकर श्याम	49
	साहित्य के सिरमौर डॉ.धर्मवीर भारती	गीतिका 'वेदिका'	29
कहानी	नशा	वीनस केसरी	05
	कुछ न सुना	डॉ. सुनीता	09
	पितर	डॉ. राम शंकर शुक्ल	12
	बर्फ	भावना लालवाणी	20
	अतीत का रावण	विनय कुमार सक्सेना	31
	फ़रेब	मीना पाठक	34
	चलती साँसों का सिलसिला	समीर लाल 'समीर'	38
	अटूट रिश्ते	ज्योतिर्मयी पन्त	44
	गिरमिटिया मज़दूर	इंदु सिंह	46
बातचीत	प्रख्यात लेखक प्रताप सहगल से	डॉ. लालित्य ललित	21
संस्कृति	भगोरिया पर्व	संजय वर्मा 'दृष्टि'	54
	अनोखी राखी	पूनम शुक्ला	55
शख्सियत	अलख आराधक श्री बाबू रणपुरा	पंकज त्रिवेदी	40
यात्रा वृतांत	एक त्रिवेणी यहाँ भी ...	केशव मोहन पाण्डेय	42
संशोधन पेपर	हरिवंश राय बच्चन के काव्य में प्रगतिशील चिंतन	डॉ. आलोक शर्मा	52
समीक्षा	कहानियों की भीड़ से अलग कहानियाँ	पंकज सुबीर	33
	झरोखा	रश्मि प्रभा	39
लघुकथा	रीति-रिवाज़	त्रिलोक सिंह ठकुरेला	08
	नई सोच	अर्चना ठाकुर	21
	तमाचा	राम रतन यादव	27
	जड़ की समझ	मनोज आजीज़	30
	अनाथ	संजय गिरी	51
समाचार			64

© सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक, प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है | प्रकाशित रचनाओं के विचार से संपादक या मंडल के सदस्यों का सहमत होना आवश्यक नहीं | समस्त विवाद सुरेंद्रनगर (गुजरात) अंतर्गत विचारणीय |

प्रकाशक : पंकज त्रिवेदी द्वारा नव्या प्रकाशन, गोकुल पार्क सोसायटी, ८० फूट रोड, सुरेंद्रनगर (गुजरात) ३६३ ००२ के लिए मुद्रित एवं प्रकाशित
मुद्रक : चंद्रिका प्रिंटरी, मिरजापुर रोड, अहमदाबाद -३८० ००१

पाठकों के पत्र

मानननीय पंकज जी,
सादर नमन.
एक वर्ष तक 'नव्या' के रूप में सफ़र करती आपकी पत्रिका अब नए कलेवर में 'विश्वगाथा' के रूप में प्राप्त हुई; पहला अंक ही 'प्रेमविशेषांक'...वाह क्या कहने... नयनाभिराम मुखपृष्ठ... पार्श्वपृष्ठ पर मन पर चित्र-सा उकेरती हुई सिने अभिनेत्री श्रीमती दीप्ती नवलजी की कविता...! आपका सम्पादकीय पढ़ा; हमारा विश्वास है कि आपने साहित्य साधना की ठान ली है तो कैसे भी छल, बल हों, आप निश्चय ही उन्हें परास्त कर अपना परचम लहराते हुए अग्रसर होते जाएँगे! आपके इस महान यज्ञ में अनेकानेक साहित्यप्रेमी आपके साथ खड़े होंगे! हर सफ़र की शुरुआत अकेले एक व्यक्ति से होती है और उसे कुछ मुश्किलों के दौर से भी गुज़रना पड़ता है परन्तु इरादे नेक और दृढ़ हों तो मंजिल आसान हो जाती है! किसी शायर ने कहा है: 'मैं अकेला ही चला था जानिबे मंजिल मगर, लोग मिलते गए और कारवाँ बनता गया'! आप पूर्ण रूप से आश्वस्त रहें, 'विश्वगाथा' को पाठकों का 'नव्या' जैसा ही नहीं बल्कि उससे भी अधिक स्नेह मिलेगा!
'विश्वगाथा' के इस प्रथम अंक में यूँ तो सभी सशक्त रचनाएँ हैं परंतु फिर भी उनमें से कुछ का उल्लेख यहाँ करना आवश्यक होगा! श्री सूरज प्रकाश जी की कहानी मन में बने आवाज़ के संवेदनशील पुल को बड़ी मार्मिकता से दर्शाती है! श्री हस्तीमल हस्ती जी ने अपने दोहों के माध्यम से वर्तमान युग के सच्चे प्रतिबिंब उकेरे हैं! आज के इस आभासी दुनिया में रहने वाले युग में श्रीमती अर्चना चतुर्वेदी जी ने अपनी रचना के माध्यम से पुराने युग की पत्रों की परंपरा को स्मृत कराया है! श्री श्रवण कुमार उर्मिलिया जी की कहानी 'सुधियों की ज़ंजीरें' में प्रेम की काव्यात्मक खनखनाहट सुनाई पड़ी और दिल को झनझना गई! श्री प्रेम जनमेजय जी के व्यंग्य तो खूब पढ़े हैं पर आपने उनकी कहानी से भी साक्षात्कार करवा दिया! श्री गिरीश पंकज जी का व्यंग्य आज के युवाओं के (तथाकथित) प्रेम की अच्छी खबर लेता है! श्री मनोज श्रीवास्तव जी की लंबी कहानी 'प्रेम दंश' रहस्य पर रहस्य उदघाटित करती चलती है! अन्य सभी रचनाएँ भी अच्छी हैं और आपके सशक्त संपादन को प्रदर्शित करती हैं! इस परिश्रम के लिए आप तथा सभी रचनाकार साधुवाद के पात्र हैं! हमें विश्वाश है कि 'विश्वगाथा' अपने नाम को साकार करती हुई हिंदी साहित्य के विश्व में गौरव से अपनी गाथा कहेगी! हमारी ओर से अनेकानेक मंगल कामनाएँ सादर/ सप्रेम स्वीकार कीजिए! - **प्रोफ़ेसर डॉ. सारिका मुकेश, वी.आई.टी. विश्वविद्यालय, वेल्लौर (तमिलनाडू).**

प्रिय पंकज जी,
नमस्कार! विश्वगाथा का ताज़ा अंक मिला. आभार. प्रेम पर केंद्रित इस अंक की सामग्री सुंदर, सारगर्भित और प्रभावपूर्ण हैं. प्रेम के अलग-अलग रंग एक साथ देखने को मिले. सम्पादकीय का अंदाज निराला है. पत्रिका का कलेवर आकर्षित करता है. मन से अंक निकाला है. बधाई स्वीकारें. पत्रिका के उज्जवल भविष्य के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ. अगले अंक का इन्तजार रहेगा. सादर, **- हिमकर श्याम**

मैं आपकी पत्रिका के नवीनतम अंक में देखा है. यह पठन-लायक सामग्री के साथ एक अच्छी पत्रिका है. अपने संपादकीय अनुभव स्पष्ट रूप से इस पत्रिका में दिखता है. बधाई हो .. हाँ, एक सुझाव - आगे से आखिर में लेखकों के पते और ईमेल है कि पाठकों को उन लोगों के साथ सीधे संपर्क में हो सकता है. धन्यवाद --- **जगदीश किंजल्क**, संपादक **Divyalok**, भोपाल.

अति उत्तम .....उम्दा पत्रिका . बधाई आपको
- नीलिमा शर्मा

नमस्कार पंकज जी !
आपकी भेजी हुई पत्रिका- "विश्वगाथा" अभी अभी download की और कुछ lines भी पढ़ी.

रात की तन्हाई में दबे पाँव आना तुम्हारा
और प्यार के चरम तक मुझको ले जाना
घटाओं सी झूकती रही मुझ पर तुम ऐसे
झड़ी सी सावन की बरसती हो तुम जैसे

इसके लिए आपका बहुत बहुत धन्यवाद ! आगे और भी बहुत कुछ है पढ़ने को... और मैंने शुरुआत भी कर दी है...
बस आपसे ये जानना चाहता हूँ कि क्या मैं भी "विश्वगाथा" का हिस्सा बन सकता हूँ ? मैं भी पिछले कुछ समय से लिख रहा हूँ, और अपनी रचनाएँ प्रकाशित करवाना चाहता हूँ, अतः कृपया मेरा मार्गदर्शन करे.... **- महेश बारमाटे "माही"**

बहुत अच्छा अंक निकाला है. सम्पादन श्रेष्ठ है. कलेवर आकर्षक है. सबकुछ बहुत उम्दा है. हार्दिक बधाई।-**अवनीश सिंह**

त्रिवेदीजी, नमस्कार. आपके द्वारा प्रेषित 'विश्वगाथा' का पहला अंक जून-अगस्त-2013 मिला। पत्रिका के रूप में आपका प्रयास सराहनीय है. इसके लिए मैं आपको हृदय से बधाई देना चाहता हूँ तथा पत्रिका की उत्ततोत्तर प्रगति की कामना करता हूँ. एक सुझाव यदि अन्यथा न लें तो, वो ये कि फाईनल प्रिंटिंग से पहले, प्रूफ रीडिंग प्रोपरली कराएं ताकि स्पेलिंग मिस्टेक को सुधर जा सके. धन्यवाद—**सुरेश ठाकुर**

प्रिय पंकज जी, नमस्कार! विश्वगाथा का ताज़ा अंक मिला. आभार. प्रेम पर केंद्रित इस अंक की सामग्री सुंदर, सारगर्भित और प्रभावपूर्ण हैं. प्रेम के अलग-अलग रंग एक साथ देखने को मिले. सम्पादकीय अंदाज निराला है. पत्रिका का कलेवर आकर्षित करता है. मन से अंक निकाला है. बधाई स्वीकारें. पत्रिका के उज्जवल भविष्य के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ. अगले अंक का इन्तजार रहेगा. अगर उपलब्ध हो तो नव्या का दूसरा अंक भी भेज देंगे. सादर, - **हिमकर श्याम**

प्रिय पंकज जी, नव्या की लम्बे समय तक प्रतीक्षा के बाद इसे नए नाम 'विश्वगाथा' और रूप में देख कर खुशी हो रही है। आप की लगन और प्रयास का सुपरिणाम है कि साहित्यप्रेमी जनों को फिर से उनका अभीष्ट मिल पाया। धन्यवाद आपको तथा आपकी पूरी टीम को। - **देओ नाथ द्विवेदी**

आदरणीय पंकज जी, नमस्कार। 'विश्वगाथा' के 'प्रेम अंक में मेरी कविता प्रकाशित करने के लिए हार्दिक आभार -धन्यवाद साथ ही सदस्य बनने के लिए आवश्यक जानकारी भी मिली --उसके लिए भी विशेष धन्यवाद. आपकी पूरी टीम को स्वतंत्रता दिवस,रक्षाबंधन,जन्माष्टमी की हार्दिक शुभकामनायें ---**पद्मा मिश्रा**

पंकज जी, बधाई. एक स्तरीय प्रकाशन के लिए. मैं खुश हूँ कि मेरे पास इस सप्ताहांत कुछ अच्छा पढने के लिए हैं **- कविता मालवीय**

संपादकीय

हमारा रिश्ता शब्द से है और शब्द ब्रह्म है

पंकज त्रिवेदी

नवरात्रि का प्रारम्भ हो गया है। शक्ति की परम कृपा प्राप्त करने हेतु सनातन संस्कृति में नवरात्रि की उपासना से जीव का कल्याण होता है। भगवती राजराजेश्वरी की विशेष पूजा-अर्चना, अनुष्ठान और घर-घर घट-कलश स्थापित किए जाते हैं। दशहरा को दुर्गा पूजा के नाम से भी जाना जाता है। लोग भक्ति में रमे रहते हैं। मां दुर्गा की विशेष आराधनाएं देखने को मिलती हैं। विजयादशमी के दिन भगवान राम ने राक्षस रावण का वध कर माता सीता को उसकी कैद से छुड़ाया था। और सारा समाज भयमुक्त हुआ था। रावण को मारने से पूर्व राम ने दुर्गा की आराधना की थी। मां दुर्गा ने उनकी पूजा से प्रसन्न होकर उन्हें विजय का वरदान दिया था। जैसे रोशनी से अंधकार दूर हो जाता है। इसी तरह मन में अच्छे विचारों को प्रकाशित कर हम मन के अंधकार को दूर कर सकते हैं। दीपावली त्यौहार उसी का प्रतीक है। हमारी जीवन में धर्म और त्योहारों का बड़ा ही महत्त्व है। जो हमें सात्विक आनंद देता है। जो दूसरों के प्रति सम्मान और प्यार बढाता है। किसी की सेवा के लिए हमें प्रेरणा देता है।

मेरे एक मित्र जो आफ्रिका में हैं। हमारा परिचय महज़ एक-डेढ़ साल से फेसबुक के माध्यम से हुआ। वो भी गुजराती है इसलिए हमवतनी होने का प्यार। कुछ दिन पहले उनका फोन आया कि आपके ही शहर में एक मित्र है। उनका संपर्क करें। मैंने उस व्यक्ति को फोन किया। मिलना तय हुआ। जब मिले तो उन्हों ने मेरे हाथों में पाँच हज़ार रुपये थमाते हुए कहा कि आफ्रिका के आपके मित्र ने यह रकम 'विश्वगाथा' पत्रिका के लिए दी है। मुझे आनंदाश्चार्य हुआ। उस साहित्यप्रेमी मित्र का नाम है – केतन मेहता। यहाँ रुपयों से ज्यादा महत्त्व है उन भावनाओं का जो उन रुपयों को देने के लिए प्रेरित कर गई। डेढ़ साल के परिचय में मेरी साहित्यिक यात्रा और लगन को उन्हों ने महसूस किया। नाम देने से कोई रिश्ता नहीं बनता और जो रिश्ते होते हैं, उसे नाम की ज़रूरत नहीं होती। मेरी एक छोटी सी कविता -

आज भी वो फूल मैंने
अपनी किताब में रखा हुआ है
तुम्हारी अनगिनत स्मृतियों के संग
पत्तियाँ जर्ज़र हो गई है मगर
रंग आज भी बरकरार है जैसे
हमारा रिश्ता !

रिश्ते कभी काम करते हैं, रिश्ते कभी भावनाओं को साथ देता है तो रिश्ते कभी आशीर्वाद बनकर उन सभी से ऊपर उठ जाता है। आज के दौर में आत्मिक रिश्तों की पवित्रता खंडित होती नज़र आती है। हम इंसानों के लिए इससे बड़ा नुकसान कोई नहीं है। आज देश में धर्म, राजनीति, व्यापार और पारिवारिक रिश्तों में भी निजी स्वार्थ और धन की लोलुपता का प्रभाव इस कदर बढ़ गया है कि रिश्ते सिर्फ नाम के रह गए हैं। मानों कोई किसी का नहीं हैं। मगर हम साहित्यकारों निराश नहीं होना चाहिए क्यूंकि हमारा रिश्ता शब्द से है और शब्द ब्रह्म है।

पिछले दो महीनों में मेरी समृद्धि बढ़ने लगी है। क्यूंकि बहुत सारी किताबें मेरी झोली में आई है। मेरे मित्र राहुल पांडे ने मुझे स्वाति पांडे नलावडे का प्रथम संग्रह 'रेवा पार से' दिया। मैंने स्वाति को बहुत करीब से जाना है। उनकी कविताएं नदी के दो किनारों सी समान्तर चलती ज़िंदगी को उजागर करती है। प्रियतम के विरह को बड़ी संजीदगी से संभाला है अपनी स्मृति में फिर भी वह बहती रहती है निरन्तर।

आशा पाण्डे ओझा का सम्पादित संग्रह 'त्रिसुगंधि' है। पहलीबार किसी संपादन में मेरी उपस्थिति दर्ज़ हुई। मेरी कविता –'चाहत मेरा स्वभाव है शायद...' । मेरे भीतर महक रहा है (मनोज अबोध), ढोल गँवार सूद्र पसु नारी (सन्तोष बंसल), ओडिया भाषा की प्रतिनिधि कविताएं (दिनेश कुमार माली), आधुनिक हिन्दी लघुकथाएँ (सं. त्रिलोक सिंह ठकुरेला), सरोरुह / संजीवनी बूटी (निर्मला सिंह) और कमरा नंबर 103 (सुधा ओम ढींगरा) और अन्य किताबें मिली। कुछेक का ज़िक्र मैंने इस अंक में किया है।

एक अहम किताब जो थोड़ी हटके हैं – "वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ" (सुधा ओम ढींगरा) । सुशील सिद्धार्थ जी लिखते हैं – "साक्षात्कार अत्यंत लोकप्रिय और उपयोगी विधा है। कुछ पत्रकारों और लेखकों ने साक्षात्कार लेने की कला को एक रचनात्मक हुनर बना लिया है। उन्हें पता है कि किसे लेखक से बात करने का सलीका क्या है? संवाद एक सलीका ही तो है। साक्षात्कार का सौंदर्य है संवादधर्मी होना। ... ऐसी अनेक विशेषताएं सुधा ओम ढींगरा द्वारा लिए गए साक्षात्कारों में सहज रूप से उपलब्ध है।"

सुधा जी ने कई बार मुझ से फोन पर बातें की है। उनकी सहजता और भावनाओं का सीधा अनुभव सात समंदर पार से भी महसूस होता है। जैसे उनकी ऊष्मा और ऊर्जा हमें मिलती हैं। कम संवादों के बीच अनगिनत संवाद करने की उनकी क्षमता हमारी वेवलेंथ पर ज्यादा निर्भर होती है। इस पुस्तक में अमरीका, कैनेडा, ब्रिटेन, डेनमार्क, नार्वे, खाड़ी देशों और भारत से भी कुछ साहित्यकारों स्थान दिया गया है। यह एक भगीरथ कार्य है।

अंत में – गुजरात के जानेमाने लोकसहित्याकर श्री बाबू राणपूरा (पू.दयालु) व्याख्यान माला में सर्व प्रथम वक्तव्य देने का अवसर मिला। गांधीनगर में आयोजित एक सप्ताह के हिन्दी नवलेखक शिविर में 13 अक्टूबर 2013 को निबंध, संस्मरण, यात्रा, जीवनी पर अपने विचार प्रस्तुत करने का अवसर मिलेगा। 21 अक्टूबर 2013 मेरा निबंध संग्रह 'झरोखा' को हिन्दी साहित्य अकादमी (गुजरात) के द्वारा पुरस्कार मिलेगा। अस्तु।

❊

आलेख

प्रेमचंद की कहानियों और उपन्यास के पात्र सदा ज़िंदा रहेंगे ...

- डॉ. सुधा ओम ढींगरा

पंजाब के जालंधर शहर में जन्मी डा. सुधा ढींगरा हिन्दी और पंजाबी की सम्मानित लेखिका हैं। वर्तमान में वे अमेरिका में रहकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार हेतु कार्यरत हैं। **प्रकाशित साहित्य**--मेरा दावा है (काव्य संग्रह-अमेरिका के कवियों का संपादन), तलाश पहचान की (काव्य संग्रह), परिक्रमा (पंजाबी से अनुवादित हिन्दी उपन्यास), वसूली (कथा- संग्रह हिन्दी एवं पंजाबी), सफर यादों का (काव्य संग्रह हिन्दी एवं पंजाबी), माँ ने कहा था (काव्य सी .डी), पैरां दे पड़ाह, (पंजाबी में काव्य संग्रह), संदली बूआ (पंजाबी में संस्मरण), १२ प्रवासी संग्रहों में कविताएँ, कहानियाँ प्रकाशित। विशेष--विभौम एंटर प्राईसिस की अध्यक्ष, **हिन्दी चेतना** (उत्तरी अमेरिका की त्रैमासिक पत्रिका) की सह- संपादक।

मुंशी प्रेमचंद के साहित्य पर आए दिन प्रश्न चिन्ह लगते रहते हैं। कभी उनकी कहानियों की सार्थकता पर आलोचनाएँ होती हैं और कभी उन पर समीक्षाएँ। साहित्यकारों के ऐसे तेवर देख कर हमेशा सोच में पड़ जाती हूँ कि कल को आगामी पीढ़ी आज के साहित्य पर इसी तरह आक्षेप लगा कर चर्चा करेगी। अगर साहित्य अपने युग का दर्पण है और युग का प्रतिनिधित्व करता है, तो उसे फिर उसी नज़र से देखना चाहिए। हर युग में साहित्य अपने समय को लेकर ही तो लिखा जाता है।

इस लेख को लिखने की प्रेरणा मुझे मेरे बेटे से मिली...बात उन दिनों की है, जब वह नार्थ कैरोलाईना युनिवर्सिटी में हिन्दी विदेशी भाषा के तौर पर सीख रहा था और कोर्स में प्रेमचंद के साहित्य को पढ़ रहा था। उसने हिन्दी माईनर ली थी और वह अन्तिम वर्ष का छात्र था। मैं अक्सर हिन्दी साहित्य पर उससे बातचीत किया करती थी और कई वे बातें उसे समझा देती थी, जो कोर्स में नहीं थीं। इरादा उसे हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रति जागरूक करना अधिक होता था।

एक दिन मैंने उसे प्रेमचंद की 'कफ़न' कहानी पढ़ते देखा और मुझ से रहा नहीं गया। मैंने प्रेमचन्द के साहित्य पर बात शुरू कर दी। बातचीत के दौरान मैंने महसूस किया कि प्रेमचंद तो युगों- युगों तक पढ़े और सराहे जाएँगे। तीन पीढ़ियों ने तो हमारे घर में ही प्रेमचंद को पढ़ा है- मेरे माँ बाप, मैंने और बेटे ने, जो अमेरिका में जन्मा-पला है। पता नहीं मुझे ऐसा क्यों लग रहा था कि प्रेमचंद के साहित्य को समझने में उसे दिक्कत होगी। वह साहित्य समाज के आधुनिकीकरण की क्रांति से परे का ग्रामीण परिवेश लिए, संघर्षों से जूझते किसानों का सीधा-सादा साहित्य है। शायद वह उससे रिलेट ना कर पाए और उसकी गहराई तक ना पहुँच सके। बात मेरी सोच के विपरीत हो गई.....

उसने हँसते हुए कहा --"माँ प्रेमचंद का साहित्य समय से पहले लिखा गया था। उनका सबसे बड़ा सम्मान है मेरे जैसे कई बच्चों ने अमेरिका में उन्हें पढ़ा और सराहा है। प्रेमचंद के साहित्य की आज भी सार्थकता है। उनकी कहानी 'कफ़न' के पात्र अमेरिका में भी मिलते है। जो वर्ग फूड स्टैम्प्स को बेचकर शराब खरीदता है। खाना बेघर लोगों की रसोई में खाकर रोज़ शराब पीकर झूमता है। क्या घीसू और माधो के चरित्रों की तरह नहीं है? ऐसा वर्ग 'कफ़न कहानी' के घीसू-माधो पात्रों का दूसरा रूप है..। मनुष्य का मूलभूत स्वभाव सब जगह एक सा है। परिवेश के साथ थोड़ा बहुत बदल जाता है।"

"भारत में ऐसा वर्ग बहुत बड़ी मात्रा में है, जिनकी पत्नियाँ दूसरों के घरों में काम करती है और पति शाम को शराब पी कर आते हैं, पत्नियों को पिटते है। मर जाती है तो जानते है कि कफ़न तो जनता ला ही देगी - पति शराब पीने से हटते तो नहीं....." बेटा बोलता गया और मैं सुनती गई --"माँ इन्टरनेट पर मैं रोज़ न्यूज़ पढ़ता हूँ--किसानों के प्रदर्शन, उनका आत्मदाह, और उनके कष्टों का पता हमें चलता हैं। जो आज किसानों के साथ हो रहा है...प्रेमचंद, तो बहुत पहले ही यह लिख चुके हैं, हम लोग ही उसे समझ नहीं पा रहे हैं।"

बेटे ने प्रश्न किया-- माँ क्या आज भारत में निर्मला नहीं है? क्या आज भारत में होरी नहीं है? प्रेमचंद की कहानियाँ और उपन्यास(उनके पात्र) आज भी जहाँ-तहाँ आपको मिल जाएँगे। प्रेमचंद के पात्र कल भी थे, आज भी हैं और कल भी रहेंगे। बेटा तो यह बात कहकर अपनी पुस्तकें उठा कर चला गया और मैं सोच में बैठी रही....

प्रेमचंद की कहानी 'बालक' याद आ गई। उसका ग्रामीण पात्र अपनी बदनाम पत्नी के बच्चे को अपना कहता है, क्योंकि अब वह उसकी है तो उसका बच्चा भी उसी का हुआ। मेरे साथ काम करने वाले रिचर्ड और जोडी का भी यही कहना है। रिचर्ड ने काल गर्ल जोडी से शादी कर उसके बच्चे को अपना कहा। जब जोडी उसकी है तो उसका हिस्सा, उसका बच्चा भी उस का है।

प्रेमचंद के ग्रामीण पात्र और अमेरिका के शहरी पात्र की सोच कितनी मिलती है। मेरे बेटे ने ठीक कहा था कि 'प्रेमचंद' के पात्र हर युग में, हर देश में, हर परिवेश में हैं, रहेंगे और मिलेंगे।

प्रेमचंद को तीन पीढ़ियाँ ही नहीं जब तक मानवी सभ्यता है लोग उन्हें पढ़ते रहेंगे। उनकी कहानियों और उपन्यासों के पात्र सदा ज़िन्दा रहेंगे।

***

कहानी

नशा

- वीनस केसरी

जन्म - १ मार्च 1985 / संप्रति - पुस्तक व्यवसाय / प्रकाशन - अनेक प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में ग़ज़ल, गीत व दोहे का प्रकाशन / विधा - ग़ज़ल, गीत छन्द कहानी आदि / विशेष - उप संपादक, त्रैमासिक 'गुफ़्तगू', इलाहाबाद - सह संपादक नव्या आनलाइन साप्ताहिक पत्रिका / पत्राचार - अंजुमन प्रकाशन / जनता पुस्तक भण्डार, 942, आर्य कन्या चौराहा, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद - 211003 / मो. - (0)945 300 4398/ (0)923 540 7119

पांचवा दिन| घर बिखरा हुआ है, हर सामान अपने गलत जगह पर होने का अहसास करवा रहा है, फ्रिज के ऊपर पानी की खाली बोतलें पडी हैं, पता नहीं अंदर एकाध बची भी हैं या नहीं; बिस्तर पर चादर ऐसी पडी है की समझ नहीं आ रहा बिछी है या किसी ने यूँ ही बिस्तर पर फेंक दी है; कोई और देखे तो यही समझे की बिस्तर पर फेंक दी है, कोई भला इतनी गंदी चादर कैसे बिछा सकता है | शायद मानसी के जाने के दो या तीन दिन पहले से बिछी हुई है | बाहर बरामदे की डोरी पर मेरे कुछ कपड़ें फैले है | तार में कपड़ों के बीच कुछ जगह खाली है, कपडे गायब है, श्रीयांश के रहे होंगे |

साढ़े चार बज गए, श्रीयांश होता तो अब तक स्कूल से वापस आ गया होता पाँच दिन से उसके स्कूल की भी छुट्टी हो रही है, मानसी को सोचना चाहिए | पहले भी इसी तरह जाती थी मगर तीन दिन में वापस आ जाती थी; ऐसा तो कभी नहीं हुआ की तीन दिन से अधिक रुकी हो | पहले तो श्रीयांश का स्कूल भी नहीं होता था, फिर भी दूसरे दिन फोन करने पर ही कहती थी "अच्छा कल आ जाउंगी" फिर इस बार क्यों...| उफ्फ... कुर्सी पर पड़े पड़े कमर अकड गई; थोड़ा टहल ही लूं... उठने की कोशिश में बेंत की कुर्सी जोर से काँपी और मैं फिर से धंस गया| कैसी बुरी आदत हो गई है; कुर्सी को कमरे और दालान के बीच डाल कर घंटों पड़े रहना और मानसी की गुस्साई आवाज़ का इंतज़ार करना "उठो भी"| आज भी शायद उसी "उठो भी" का इंतज़ार था, भूल ही गया था की "उठो भी" की आवाज भी मानसी के साथ ही पांच दिन पहले जा चुकी है और तीन दिन होने के बाद भी नहीं लौटी है| इस बीच दो ग़ज़ल कह ली, एक नज़्म और एक कविता भी लिख ली, आज तो कुछ लिखने का मन ही नहीं कर रहा,,, वैसे मानसी के जाने का एक फ़ायदा तो होता है ; थोड़ा एकांत मिल जाता है और कुछ लिखने पढ़ने का मन करता है, कल दूध वाला भी पूछ रहा था "मालकिन नहीं लौटी?" आज भी एक लीटर ही दूं ? तीन की जगह एक लीटर देने में बेचारे को बहुत कोफ़्त होती है सीधा सीधा आधा लीटर पानी का नुकसान होता है, आज तो दूध देने ही नहीं आया |

क्या आज फिर से फोन करू ? कल भी तो किया था और परसों भी; मगर एक बार भी मानसी नें नहीं कहा "अच्छा कल आती हूँ" जाते समय तो उतना ही गुस्सा थी जितना हर बार होती थी; मगर जाते हुए कैसी बातें कर रही थी.. "अब तुम्हें किसी एक को चुनना ही होगा"

किन दो में से चुनना होगा? क्या चुनना होगा? क्यों चुना होगा? कुछ भी तो नहीं बताया, मगर शायद इसलिए की मुझे पता है किन दो की बात कही जा रही है |

पिछले चार दिन से "किसी एक को चुनना ही होगा" की प्रक्रिया चल रही है, समझ नहीं पा रहा की यह क्यों जरूरी है, जैसे इतने दिन से सब कुछ चल रहा है क्या आगे भी नहीं चल सकता ? क्यों चुनना है किसी एक को ? क्यों ? क्या मैं मानसी के बिना रह सकता हूँ, पता नहीं मैं कल्पना भी कैसे करू इस बात की| तो क्या फोन पर मानसी को कह दूं की, हाँ मानसी मैं तुम्हें चुनता हूँ, प्लीज़ अपने घर लौट आओ| सूरज ढल रहा है, उफ़! अब क्या जाऊँगा टहलने, अब तो कुछ काम ही किया जाए, किचन गया तो वह भी अपनी फूटी किस्मत पर जार जार रो चुकी बेवा की तरह लग रही थी, सफाई करने की सोच कर गया था मगर अब दराज़ से टोस्ट का पैकेट निकालकर वापस कुर्सी पर आ गया हूँ फ्रिज़ से दूध का भगोना भी ले आया कल का थोड़ा सा दूध बचा है उसी में टोस्ट डूबोकर खाने लगा| फिर से बरसात होने लगी है पानी की बौछार बरामदे से कुर्सी के पाए तक आ रही है, मानसी होती तो एक बार फिर से कहती "उठो भी" पिछले पांच दिन से जैसे जैसे दिन बीतते जा रहे हैं मेरा फैसला दृढ होता जा रहा है की मैं सब कुछ छोड़ सकता हूँ मगर मानसी को नहीं | आज फोन करके मानसी को अपना फैसला सुना दूंगा| कमरे की ओर झुक कर घड़ी देखा;सवा पांच बज गए, फैसला करके मन थोड़ा हल्का हो गया तो आँख बंदकर के कुर्सी

पर ही लुढक गया |

***

सात बज रहे हैं हाथ में एक लिफाफा और दूसरे हाथ में कुछ कागज़ लेकर फिर से उसी कुर्सी पर बैठा हूँ लिफाफा अभी कोरियर वाला दे गया है | बारिश रुक चुकी है | इस बीच दूध का भगोना रखने किचन में गया था तो थोड़ी सी सफाई कर दी, बिस्तर पर नई चादर डाल दी, बोतल में पानी भर कर फ्रिज में लगा दिए और बाहर बरामदे से कपडे ला कर अलमारी में रख दिए, किताबें फैली थी उनको भी समेट दिया की घर लौटने पर मानसी को उसका घर कुछ तो उसका लगे, फोन करने जा रहा था की जब कोरियर वाला ये लिफाफा दे गया भेजने वाले का नाम मानसी देख कर दिल जोर से धड़क गया और अब खोलने पर अंदर से निकले पाँच पन्नों में लिखावट भी मानसी की ही है, लिखावट पहचान कर इतनी देर से पढ़ने की हिम्मत ही नहीं हो रही है, पता नहीं क्या सूझी मानसी को खत लिखने की, उलट पलट के पढ़ना शुरू किया

रवि,

कैसे हो, जानती हूँ अच्छे से नहीं होगे, पूरा घर फैला होगा और मेरे लौटने की राह देख रहे होगे; पहले के दो दिन में कोई गज़ल, कविता, नज़्म, कहानी या ये सारी चीजें लिख चुके होगे, तुम्हें यह चिट्ठी देख कर अजीब लग रहा होगा, मैं पहले यह चिट्ठी तुम्हारे हाथ में दे कर आना चाहती थी, मगर लिख ही न सकी, लिखी ही न गई | मगर अब जब तुम दो दिन से फोन कर रहे हो तो लिख रही हूँ| मैंने घर से जाते समय तुमसे कहा था तुम्हें अब निर्णय लेना पडेगा की तुम्हें क्या छोडना है क्योंकि एक को तो छोड़ना ही होगा, मगर मैं गलत थी, हाँ मैं गलत थी, क्योकि मैंने तुमको मुझमें और तुम्हारी कलम में से एक को छोड़ने को कहा था, तुमको कविता, कहानी, गज़ल से दूर हो जाने की बात कह दी मगर जब सोचना शुरू किया तो कई बातें खुल कर समझ आने लगीं| याद करो, कालेज में हम पहली बार मिले थे और हमारे मिलने का कारण बनी थी वो कविता जो तुम सीनीयर्स को इंट्रो के समय सुना रहे थे आज भी उसी ओज के स्वर में ये अन्तिम पंक्तियाँ मेरे जेहन में विचरती हैं नहीं हटूंगा, नहीं डरूंगा, अपने कर्म के पथ से, कभी तो मंजिल मिलेगी मुझको, होगा जय का घोष | सिनीयर्स के कई ग्रुप जो किसी जूनियर को नहीं बख्श रहे थे वो भी तुम्हारी कविता से प्रभावित थे, सम्मोहित थे | हमने कविता पर बात करनी शुरू की जो कविता से शुरू होती और राजनीति, धर्म, दर्शन और न जाने किन किन बातों पर खत्म होती | समय बीतता गया और हम नज़दीक आते गए, पहला साल बीतते बीतते हम जान गए की भावनाओं को दोस्ती के दायरे में रख पाना अब संभव नहीं है, तुम्हारी कविताओं से प्यार करते करते मैं तुमसे प्यार करने लगी और तुम भी तो कुछ ऐसा ही सोचते थे |

फिर शुरू हुआ प्यार का सिलसिला, रूठने मनाने का सिलसिला, मैं रूठ जाती तुम एक बढ़िया सी कविता लिख कर सुना देते और मैं मान जाती, सिलसिला चल निकला मैं बार बार रूठने लगी; तुम बार बार मनाने लगे; हर बार एक नई कविता, नई नज़्म, नई कहानी, और कभी नई गज़ल; कभी कभी मैं बिना कारण के ही तुम्हारी नई कविता के लिए तुमसे रूठ जाती थी और इस तरह दो साल और बीते चौथे साल मुझे इस बात का एहसास होने लगा की तुम्हारी कविताओं की धार खत्म हो रही है, जब तुम खुश रहते हो सामान्य रहते हो तो जो कुछ लिखते हो वो भी सामान्य सा ही रह जाता, कुछ कमी सी नज़र आती और फिर जब हमारा झगडा होता तो तुम मुझे फिर चौंका देते; फिर वही तेवर, फिर वही ओज ... इस बीच मुझे यह भी लगाने लगा की तुम छोटी छोटी बात पर झगड पड़ते हो, झिडक देते हो, बहस करते हो मगर मैं कारण समझ न सकी |समझ तो मैं शादी के पांच साल तक नहीं पाई, मगर अब समझ आ रहा है शायद तुम भी समझ गए थे की तुम्हारी कविता मर रही है, तुम्हे जरूरत थी दुःख की, उस दर्द की जो मुझसे दूर रह कर तुम्हें हासिल होता था, जो तुम्हारी कविताओं में फिर से प्राण फूक देता था| शादी के बाद भी यही सब होता रहा, तुम लड़ते रहे, झगड़ते रहे, बिगड़ते रहे | जब जब तुम्हें लगा तुम्हारी कविता मर रही है तुम मुझसे लड़ते | तुम्हें कहानी, कविता गज़ल या नज़्म लिखने का नशा नहीं हैं | रवि, तुम्हें नशा है दुःख का, दर्द का, गम का | आज तुम इस बात को स्वीकार कर लो की तुम्हारी ज़िंदगी में इस नशे से बढ़ कर कुछ नहीं है | यह तुम्हारा नशा ही है जो तुमसे कलम उठवाता है, तुम्हारी लेखनी में आग भरता है दुःख का नशा ही है जो तुमको मजबूर कर देता है कुछ लिखने पर और यह नशा ही है जिसने हमारी जिंदगी को बर्बाद कर के रख दिया | मैं गलत थी जो मैंने तुमसे कलम को छोड़ने की बात कही| तुम लिखना छोड़ ही नहीं सकते, जब जब तुम दुःख का नशा करोगे तब तब तुम लिखने को मजबूर हो जाओगे| पता नहीं यह बात मैं अब समझ पाई हूँ या शादी के समय ही समझ गई थी, शायद समझ तब ही गई थी मगर स्वीकार आज कर पाई हूँ क्योंकि तभी तो शादी के बाद ही हर तीन चार महीने में बात-बेबात तुमसे बहस कर के दो दिन के लिए पापा के घर आ जाती थी जिससे तुम्हारी नशे की खुराक तुम्हें मिलती रहे, तुम लिखते रहो, मगर मैं यह ना समझ सकी की तब क्या होगा| जब तुम्हारा नशा बढ़ेगा |

तुम गलतियाँ करते और तुम्हारे पास इसका कोई कारण न होता, गलतियों को दोहराना और माफी मांगना तुम्हारी आदत बन गई, तुम सोचते हर बार, तुम्हें हर कोई माफ कर दे, मगर कोई क्यों माफ करे तुमको बार बार|?क्यों तुम्हारी बेवकूफियों को झेलते हुए तुम्हारे साथ रहे ?क्यों तुम्हारे साथ निभाए? तुम्हारे इस नशे की वजह से ही लोगों ने तुमको छोड़ना शुरू कर दिया, तुमसे दूर होने लगे, कटने लगे और तुम ! तुम्हारी तो मन माँगी मुराद पूरी हो रही थी तुम्हारे दुःख का नशा पूरा हो रहा था तुम कविताएं लिख रहे थे,,,अच्छी कवितायेँ | महीने घटते गए, हमारी बहस बढ़ती गई चार से तीन, तीन से दो, दो से एक महीना और अब एक महीने से घट कर पंद्रह-बीस दिन में तुम्हें तुम्हारा नशा चाहिए, अब नशे के बिना तुम्हारा सामान्य लिख पाना भी मुमकिन नहीं | बिना प्रताडित किये, बिना हाथ उठाए तुम पर अब नशा भी तो नहीं चढता है मगर अब मुझे तुम्हारे साथ साथ श्रीयांश के बारे में भी सोचना है चार साल का हो रहा है स्कूल भी जाने लगा है| डरती हूँ कि जब तुमको नशे की लत इतनी ज्यादा हो जायेगी कि उसे मैं पूरा न कर सकूंगी तब क्या होगा | क्या तुम मुझे मार डालोगे ? या खुद को ?

तुम इस नशे से मुक्त नहीं हो सकते और मैंने फैसला कर लिया है, तुमको इस नशे के साथ रहने के लिए इस बार हमेशा हमेशा के लिए छोड़ कर आई हूँ, मैंने पापा से बात कर ली है, श्रीयांश का एडमीशन यहाँ बगल के स्कूल में करवा दिया है, लौटने के लिए मत कहना, मैं पत्रिकाओं में तुम्हारे लेख, कविताये पढ़ती रहूंगी

-मानसी

मेरा हाथ थर थर काँप रहा था, आँखे जैसे अविश्वास से फटी जा रही थी फिर धीरे धीरे मुंदने लगी, उंगलियां से पन्ने अपने आप फिसल गए और उंगलियां आँखों के कोर के पास पहुँच गईं| उठा और जाकर राइटिंग टेबल की कुर्सी पर बैठ गया और कलम उठा कर लिखने लगा ...

माना की सुबह के तो उजाले नहीं थे हम
ठुकरा दो हमको इतने भी काले नहीं थे हम
तोड़ा गया है मुझको अजब दिल्लगी के साथ
यूं अपने आप टूटने वाले नहीं थे हम

मंजिल के पास जा के हम लौटने वाले नहीं थे हम

***

साहित्य की थाती राजस्थानी भाषा और पर्यटन के नवीन अवसर

- डॉ विमलेश शर्मा

मरुधर देश अर्थात राजस्थान शताब्दियों से अपनी विशिष्ट पहचान बनाये हुए है अरावली पर्वतमाला और विषम स्थलाकृति ने इस प्रदेश की 5000 वर्ष पुरानी सभ्यता और संस्कृति को एक धरोहर की भांति संभाल कर रखा है .यहाँ के लोग ,लोक भाषा ,संस्कृति, लोक नृत्य ,लोक चित्रकला सभी में सजीवता ,माधुर्यता एवं अपनेपन के दर्शन होते है .राजस्थानी भाषा जिसके लिए कहा गया है कि यह हर चार कोस पर बदल जाती है परन्तु इस वैविध्य में भी एक अनूठे ऐक्य के दर्शन इस भाषा में होते हैं।धोरो की इस पावन धरती की भाषा राजस्थानी ने केंद्र सरकार को भी इसे विशिष्ट दर्जा प्रदान करने को बाध्य कर दिया है. यहाँ कन्हैयालाल जी सेठिया, केसरी सिंह जी बारहठ, सूर्यमल्ल जी मिश्रण, विजयदान जी देथा, श्री नन्द भारद्वाज तथा श्री चन्द्र प्रकाश देवल जैसे अतिविशिष्ट साहित्यकार हुए है जिन्होंने अपनी रचनाओं से राजस्थानी भाषा को समृद्ध किया है. यह धरती वीरोचित भावनाओं से समृद्ध धरती है, यह धरती है ढोला-मारू के माधुर्य पूर्ण प्रेम की धरती इसीलिए यहाँ का जनमात्र कण कण सूं गूंजे जय जय राजस्थान का स्वर उच्चारित करता है । लहरिया की ही भांति राजस्थानी भाषा विविध गुणों एवं रंगों को अपने विस्तृत कलेवर में समेटे हुए है । यहाँ की भाषा का आकर्षण ही है कि केसरिया बालम आओ नी पधारो म्हारे देश लोकगीत आज राष्ट्रीय ही नहीं वरन अंतर्राष्ट्रीय फलक पर छाया हुआ है .यहाँ की भाषा में वो शक्ति है जो मृत्यु को भी एक उत्सव की तरह मानने को बाध्य करती है .यहाँ माताएँ बचपन से ही अपनी संतानों को "ईला न देणी आपणी हालरिया हुलरायै " जैसे गीत लोरी की तरह सुनाती हे ,तथा राष्ट्र को श्रेष्ठ पुत्र रत्न प्रदान करती है, निः संदेह यह यहाँ की भाषा की महानता का ही प्रमाण है।भारतीय संस्कृति की अनेक सात्विक विशेषताओं को राजस्थानी भाषा अपनी कोख में संजोये हुए है .वर्तमान में ज़रूरत है इस मायड़ भाषा के सुचारू प्रचार की जिससे पर्यटन के नवीन अवसर राजस्थान को प्राप्त हो।राजस्थान अपनी अनूठी विशेषताओं के कारणपर्यटन के सर्वोतम अवसर भारत को प्रदान करता है

परन्तु इसमें अभी भी अपार सम्भावनाए छिपी हुई है जिन्हें खोजने में राजस्थानी भाषा एक महत्त्वपूर्ण माध्यम साबित हो सकती है .

***

लघुकथा

रीति-रिवाज़

- त्रिलोक सिंह ठकुरेला

जगतपुरा के पंडित गजानंद के दो बेटे शहर में सरकारी सेवा में थे | परिवार में सब की सलाह से घर में हैण्डपंप लगाने का निर्णय लिया गया | कुएं से पानी भरकर लाना अब उन्हें शान के खिलाफ लगाने लगा था |

पड़ोसी गाँव से रतिराम एवं चेतराम को बुलाया गया | दोनों दलित थे, किन्तु आसपास के इलाके में वे दोनों ही हैण्डपंप लगाना जानते थे | दोनों ने सुबह से दोपहर तक मेहनत की एवं हैण्डपंप लगाकर तैयार कर दिया | हैण्डपंप ने मीठा पानी देना शुरू कर दिया |

पंडित गजानंद द्वारा रतिराम एवं चेतराम को मेहनताने के साथ-साथ दोपहर का खाना भी दिया गया | खाना खाने के बाद रतिराम एवं चेतराम पानी पीने के लिए जब हैण्डपम्प की ओर बढे तो पंडित गजानंद ने उन्हें रोक दिया | बोले – "अरे भाई, माना तुम कोई काम जानते हो, तो क्या सारे रीति-रिवाज़ भुला दोगे | ज़रा जाति का तो ख्याल रखो | यह ब्राहमणों का हैण्डपंप है |" उन्होंने लडके को आवाज़ दी – "राजेश, इन दोनों को लोटे से पानी तो पीला |"

रतिराम एवं चेतराम ने एक दूसरे की ओर देखा, जैसे पूछ रहे हों – यह कैसा रीति-रिवाज़ है?

❊

क्षमा याचना

विश्वगाथा के प्रथम अंक (जून-अगस्त-2013) के 'प्रेम विशेषांक' में **'औकात'** कहानी मूल रूप से लेखक **श्री मुकेश कुमार 'गजेन्द्र'** की थी | जो श्री बलराम अग्रवाल के नाम से छप गई थी | हम श्री मुकेश कुमार से क्षमा चाहते हैं |

- संपादक

आलेख

उत्तराखंड आपदा

- आरती शर्मा

18 जून सन 2013 रात्रि करीब आठ बजे आई उतराखंड में प्राकृतिक आपका ने सम्पूर्ण देश को हिलाकर रख दिया है | मनुष्य ने अपने स्वार्थ के लिए प्रकृति से अनवरत छेड़छाड़ कर प्रलय को जन्म दिया है | जंगलों का गायब होना, नदियों पर बाँध, प्रदूषण सब इसके जीते-जागते उदहारण है और कोई भी इनसे अनभिज्ञ नहीं है | प्रकृति की रचना में हस्तक्षेप ही प्रलय का प्रमुख कारण है | नदियों पर अपने स्वार्थ के लिए बांध बना दिए गये, उनका वेग रोक दिया गया, बहने की दिशा बदल दी गई ..अब कभी न कभी तो तबाही निश्चित ही थी. केदारनाथ, बद्रीनाथ, हेमकुंड साहेब और आसपास के सभी पहाड़ी इलाकों के रहनुमाओं और पर्यटकों ने पिछले दिनों जो मंजर देखा और जिन हालातों का सामना किया वह रोंगटे खड़े कर देने वाला है। जहां एक ओर प्राकृतिक आपदा के चलते हजारों सैलानियों और तीर्थयात्रियों ने अपनी जान गंवाई, वहीं आज भी बहुत से लोग मदद के इंतजार में भूखों मरने के लिए मजबूर हैं। इतना ही नहीं, बहुत से लोग तो यह भी नहीं समझ पा रहे कि जिन अपनों की वे तलाश कर रहे हैं वह वाकई जिन्दा हैं भी या नहीं? इन सब का ज़िम्मेदार कोन है? पहाड़ी क्षेत्रों और नदी के आसपास वाले इलाकों में आई इस आपदा के लिए कोई और नहीं बल्कि स्वयं मानव ही ज़िम्मेदार है।

पिछले कुछ सालों में केदारनाथ और बद्रीनाथ में सैलानियों की आवाजाही में लगभग 10 गुना बढ़ोत्तरी हुई , जिसकी वजह से तापमान के साथ-साथ वहां प्रदूषण की मात्रा में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई और इसी का खामियाज़ा हमें भुगतना पड़ रहा है। पहाड़ी संकरे इलाकों में भारी-भरकम वाहनों, पुलों और इसके अलावा पानी जमा करने के लिए बनाए गए बांध भी आज मानवजाति के ही दुश्मन बन गए हैं। हम प्रगति तो कर रहे हैं लेकिन कोई इस बारे में सोचने में दिलचस्पी नहीं ले रहा है कि जिस प्रगति की राह पर हम चल रहे हैं वह नकारात्मक है या सकारात्मक? धारणीय विकास की जगह हम अल्पावधि विकास को ही महत्ता दे रहे हैं। इंसानी लालच के साथ साथ हो रहे विकास जंगलो का पतन नदियों नालियों (गधेरे) को शोषण के साथ बढ़ता पाप इस महाप्रलय की जननी है ! तपो भूमि के नाम से प्रसिद्ध उत्तराखंड जहाँ तीर्थ यात्री कभी मात्र उस प्रभु के जाप के साथ चला करते थे वहां अब अपने सुखों का आनंद लेने के साथ साथ अय्याशी के लिए जा रहे हैं | पाप बढ रहा है विकास हो रहा है सारे पहाड़ हिल चुके हैं जंगल के जंगल साफ हो चुके हैं पानी के बहाव को रोकने से रास्ते बंद हैं जिससे पानी का तेज बहाव तबाही मचा रहा है ! यह आज की प्राकृतिक भीषण आपदा है पहाड़ों में कोई बरसात ऐसी नहीं होता जिस बरसात में गाँव के गाँव नहीं बहते ! प्रकृति पर जहाँ तक इंसानी पहुँच है, वहां मानव ने पहुंचकर तबाही मचा दी है. इसे रोकने के लिए विकास के साथ-साथ विनाश पर रोक के साधन भी ढूढने हैं वृक्षारोपण पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है ! हमारी अपनी गलतियों की ही वजह से हमें ऐसे हालातों से रुबरू होना पड़ता है | इस आपदा के मृतकों को नम आँखों से श्रद्धांजलि | ❊

कहानी

कुछ न कहा ...

- डॉ. सुनीता

सहायक प्रोफ़ेसर, नई दिल्ली
drsunita82@gmail.com

नील गगन से धीरे-धीरे वह पृथ्वी की ओर बढ़ रही थी. लहरों से टकराती हवाएं सुर-संगीत छेड़ रही थीं. उनकी मर्मस्पर्शी सुर लहरियों में हृदय द्रवित हुए जा रहा था. उसमें इस कदर डूबा जा रहा था मानों किसी गहरे मोहपाश ने धर दबोचा हो. उन कगारों के कोरों में जो टीस, दर्द, वेदना, व्यथा और पीड़ा थी वही सब कुछ उसके दिल के कोनों में मचल रहे थे. इनमें भेद इतना ही था कि वह अपने को मूक करके संगीत सुना रहा था. ऐसा सुनने वालों को आभास हो रहा था. जबकि वह अपने अंदर सदियों से पल रहे घाव को थपकी देके सहला-सहला के गहे-गहे सुला रहा था. इधर ख़ामोशी का समुन्दर हौले-हौले हिचकोले ले रहे था.

गिरती-उठतीं मासूम तरल-तरंगे बार-बार उसे झिंझोड के जगातीं लेकिन बर्फ से जमे हृदय के चोट को वह बिन ताप के पिघलाने में नाकाम थीं. इस शिकस्त से मन-मस्तिष्क बेहाल हो रहा था. उबन से निढाल हो कर जमी पर बिखर रहे थे. कोई भी रास्ता सुझाई नहीं दे रहा था. सच तो यह था कि तपते सूरज की स्वच्छ किरणें उस तक पहुँच नहीं पा रही थीं. किसी घाव के भरने में जितना हाथ मरहम का होता है; धूप का रोल भी उतना ही महत्वपूर्ण होता है. इन दोनों से जरा भी कम व्यक्ति के इच्छा शक्ति का नहीं होता है.

शरीर पर लगे चोट की दवा हर जगह सुलभता से मिल जाती है. दिल पर लगे गहरे चोट का इलाज बहुत ही मुश्किल है. उसे समय ही भर सकता है. वक्त के हाथों बनने वाली परिस्थितियाँ ही इसे अपने जगह पर वापिस ला सकती हैं. इन्हीं विचार मंथन के बीच से बीते दिनों की यादों के पट खुलने लगे. पलकों के नीचे नमकीन पानी झिलमिला उठे. नैनों के दरमिया एक अबूझ जंग लड़ी जाने लगी. वह न जाने कब तक जारी रही. जरा से समय के मिलते ही एक-एक करके उघड़ने लगे. सिलापट्टों पर युगों-युगों से अंकित वरद वाक्य उसके आँखों में जब्त थे. लैला-मंजनू के हाल-बेहाल के दरिंदगी की कहानियां जुबान पर अब भी चढ़े हुए थे. उनके आहों से निकले शब्द इक्कीसवीं. सदी में भी ध्यानाकर्षण का केन्द्र बने हुए हैं. झनकते ज़ज्बातों के झंकार अब भी अपनी ओर खींचते हैं. आज भी युवा पीढ़ी की पहली पसंद हैं. दकियानूसी खाप पंचायतों की रिवायती प्रथाएं भी चिपकी हुई हैं. मस्त दीवानों, परवानों और पागल प्रेमियों के लिये इनकी गीदड़भभकी की एक नहीं चलती है.

अपने खूबसूरत दिनों के बीते लम्हों को याद करते हुए वह लगातार सोचे जा रही थी. कास वो दिन एक बार फिर से लौट आयें तो उन्हें दुबारा जाने नहीं दूंगी. उन सुहानी मौसमों के रुतों को अपने आँचल के किनारों से गांठ बांध दूंगी ताकि यहाँ से कहीं न सरक सकें. मेरे मखमली पलों के हमराही मेरे साथ ही चलो गुनगुनाते हुए. मन में उठते खुशी के गुबार एक बार फिर अपने आगोश में छिपा लेते हैं. ऐसे जैसे शबनम भिगो देता है नन्हें दूब के नोकों को..

फूलों पर मंडराते भंवरें अपने चारो-ओर शोर मचाने लगे. चट्टानों से सरकतीं बारिश की बूंदें कलकल करती लदबेदिया पहाड़ से लगे नदी में समा रहीं थीं. जो जागेश्वर नाथ मंदिर के मार्ग से होकर गुजरती हैं. उसके ऊपर बने पुल बहुत पुराना हो चूका है. लेकिन लोगों के रोजगार और आवाजाही का मुख्य मार्ग है. सुबह से देर शाम तक लोगों की चहलकदमी देखी जा सकती है. चारो तरफ ऊँची-ऊँची पहाड़ों की चोटियाँ हैं. जिन पर खूंखार जानवरों का रैन-बसेरा है. हाथी, चीता, शेर, बाघ, तेंदुआ, सियार सहित भालुओं का अपना एक राज है. जिस पर कोई भी आसानी से चढ़ाई नहीं कर सकता है. शिकार खेलने वालों के बारे में भी सुना जाता रहा है. इन मासूम जानवरों के खालों को खींच के बेचने की भी बातें आम हैं. परन्तु यहाँ के स्थानीय निवासियों के कारण किसी को ऐसा करने की हिम्मत नहीं होती है. वो लोग निरीह पशुओं के हत्या के शख्त खिलाफ हैं. गलती से यदि कोई ऐसा करने में कामयाब हो जाये लेकिन अगली बार वह उस स्थान के आस-पास भी नजर आ गया तो गांव वालों के हत्थे चढ़ने से खुद को नहीं बचा सकते हैं.

जंगल-झाडियों के बीच पले-बढ़े उनके बच्चे इतने बहादुर होते हैं कि मजाल है, कोई उनको चकमा देके निकल जाये. यह सम्भव नहीं है. वहां के चप्पे-चप्पे से वाकिफ हैं. विज्ञान के इतने खोज-बीन के बावजूद ये जंगल के जड़ी-बूटियों को सर्वोपरी मानते हैं. कभी-कभी मुझे भी ऐसा ही लगा है. जो काम बड़े-बड़े डाक्टरों की दवाएं नहीं कर पाती हैं. वह काम यह चंद पत्तियों के रसों से कर दिखाते हैं. कई बार खुद को उनसे ठीक होते पाई हूँ. इन्हीं दवाओं की जादूगरनी मंजरी भी थी. उसके सोचने-समझने के तौर-तरीके ही कुछ और थे. उसके सपने बहुत ही बड़े-बड़े थे. राजकुमारियों वाले तेवर थे. किसी की बात को बीन लाग-लपेट के अपने तर्कों से खारीज, चुटकी बजा के कर देती थी.

कहने को वह बकरियां चराया करती थी. उनके साथ ही अपने मन के सारे भावों को बांटा करती थी. बकरियों को सुन्दर-सुन्दर नामों से पुकारा करती थी. सुनने वालों को एकवारगी में ऐसा लगता, जैसे उसकी मित्रमण्डली बैठी हो, जिनके साथ वह अक्सर चुहलबाजी करते हुए. हंसी-ठिठोली में मगन रहती है. लेकिन नजदीक जाते ही सारे भ्रम हवा हो जाते. इसी मायाजाल का शिकार विनोद भी था. विनोद उसी के पड़ोस में रहने वाले महंगू काका का नाती था. हाल ही में गांव आया है.

जवान बेटे-बहु अपने रसुक में इतना मगन हो गए की उन्हें अपने बुजुर्ग माँ-बाप बोझ लगने लगे. यह आज के दौर का सबसे बड़ा कोढ़ है. इससे हर कोई ग्रसित है. भाषाई शर्मिंदगी के आगे सब कुछ बेमानी है. इसी के मारे ये दो जिस्म हैं, जो आज तन्हाई की जिंदगी गुजारने को विवश है उनके इसी चुप्पी का साथी विनोद बना हुआ है.

लाया गया था या जबरदस्ती भेजा गया था. यह एक रहस्य सा प्रतीत होता रहा है. उसके चेहरे पर फैली उदासी के घनघोर बादल कम से कम यही कह रहे थे. माँ-बाप के प्यार-दुलार के उम्र में उसे जख्मे-ए-जुदाई दे दी गयी. दुनिया कितनी स्वार्थी है. जीवन के अंदाज़ को सिर्फ अपने नजरिये से देखती है.

एक बेटी का माँ के जायदाद में हिस्सा भले ही न हो लेकिन बच्चे नानी-नाना के गोद में स्वर्ग का सुख बढ़ाते हैं. बूढ़ों के आँख का तारा धीरे-धीरे किसी के निगाहों का सितारा बनता जा रहा था. सब कुछ अनजाने में ही होते जा रहा था. बैलों, गायों और बकरियों के झुंडों में कब दो बदन आग में जलने लगे किसी को कानों कान पता ही नहीं चला. यहाँ तक उन दोनों को खुद भी इस बात का एहसास नहीं हुआ की आखिर सब क्या हो रहा है... बिस्तर पर करवट बदलते सुबह हो जाती. रात बीतने की बेचैनी इतनी कभी नहीं थी जितनी अब हो रही है. यह क्या है...?

सुने दिल के तार उलझते जा रहे थे...

एक-दूसरे को निरखने की बेताबी इतनी हावी होती की कुछ भी सुझाई नहीं देता. पढ़ने-लिखने का भी कोई खास ख्याल ही नहीं रहता. यह बेकली...किस शरीर के ताप की तपन में जला रही थी दिल-दिमाग के मध्य द्वन्द-युद्ध जारी था...

उस दिन अचानक से झमाझम बारिश क्या हुई; धरती से अम्बर तक एक नीली चादर फैली नजर आने लगी.निखरा, निथरा बादल दिल के बेचैनी को और बढ़ा रहा था. आसमान का नीला रंग मानों उनके चेहरे पर ऐसे पड़ रही थीं जैसे समुद्र के पानी में सूर्य की किरणें पड़ने से समुन्द्र का खारा जल भी चमक उठता है.

श्याम रंग में नहाई जिस्में मन को बेकाबू करने लगी. सागर के गोद में समाती बूंदों की भांति दोनों निर्लिप्त ...

पनाह की तलाश में असमान से निकली ये व्याकुल नीर पेड़ों के लंबी लंबी डालियों से खेलते हुए मिटटी में जज्ब हो रही थी. उनके मिलन यामिनी से अपने बिछड़े मीत की याद और गहरी हो रही थी. अतीत के झरोखे से झांकते पल आँखों के सामने साक्षात् होकर डोलने लगे. कितनी सुहानी सुबह थी. हम एक-दूसरे से गलबहियां डाले चल रहे थे. पहाड़ों के किनारे के पगडंडियों से चलते हुए मदमस्त थे. चारो तरफ पलास के पेड़ों की पंक्तियाँ लगी हुई थी. कुदरत ने वृक्षों की कतारें ऐसे लगा रखीं थी जैसे मोतियों की लड़ियाँ बिछा रखीं हैं. जिसमें टके छोटे-छोटे फूल, पत्ते तारों से चमकीले लग रहे थे.

उस तरफ रह-रह के निगाहें उठतीं रहीं. तारीफ के लहजे के लिये माकूल शब्द नदारद थे. ऊँचे-ऊँचे पेड़ों के साथ-साथ बहुत सारे छोटे-छोटे पेड़ की कलियाँ बिछीं हुई थीं. उससे लिपटीं लता के पौधे गजब ढा रहे थे. चीखू, आम, बबूल,चीड़, बरगद कदम के साथ झरबेरिया के अनगिनत झुरमुट फैले हुए थे. उन्हीं सकरे रास्ते से वो दोनों अक्सर घूमने जाया करते थे. हाथों में हाथ डाले कब शाम दस्तक देने लगती पता ही नहीं चलता था. कदम से कदम मिलाकर चलते हुए अक्सर दुनिया जहान पर बहस छिड़ जाती. एक सिरे से उठी बातें कई सिरों को पकड़ते हुए आगे बढ़ती चली जातीं. साहित्य शिरोमणी प्रेमचंद के रचे रचनाओं में सन्निहित गरीबी, भूखमरी, लाचारी, बेईमानी, घूसखोरी, लूट, अत्याचार, अपराध , असमानता से लगायत हर एक बिंदु पर बारीकी से विमर्श करते. भगवती चरण वर्मा के 'रेखाचित्र' के मोह, माया, वासना के सागर की पड़ताल की बातों के साथ ही इतिहास को टटोलती रचनाओं पर भी गहरा मंथन करते. पहाड़ों की बड़ी गर्बीली चट्टानों पर बैठ के ऐसे बतकही करते जैसे कोई बौद्धिक मंच हो जहां ज्ञान बघार रहे हैं.

वह केवल किस्से कहानियों के पात्रों तक ही नहीं सिमटे रहते बल्कि जीवंत इंसानों के अंदर चल रहे खुराफात को भी अपने विचार का केंद्र बनाते. कौन हीरो कितना जीरो हुआ और कौन हिरोइन कितने लोगों के घर तोड़ने से लगायत शादी करने के तिकडम में कितना कामयाब हुई तक की बातें करते हुए नहीं अघाते थे. माधुरी ने अपने घक-घक के दम पर किन –किन को लट्टू बनाये हुए है. उनके एक अदा पर कितने फ़िदा होके मजनू बने फिर रहे हैं. मधुबाला से लेकर स्मिता पाटिल तक पर बात -चीत सहज ही करते. एक-एक चीज पर अपनी पैनी निगाह जमाए रखते. वहाँ पर संचार के बहुत उन्नत साधन उपलब्ध तो नहीं थे. लेकिन रेडियो की अनुगुंजित आवाजें पहाड़ों में रात-दिन सुगबुगाहट बनाये रखतीं. समाचार के द्वारा देश-दुनिया के गतिविधियों पर भी ध्यान बराबर का लगा रहता.

सम्पूर्ण विश्व में फैले नए-नए संसाधनों की व्याख्या व्यंग्य की सुरीली जुबान में करते.

वह जो चुलबुल चिट्पूटीया जब से आई है पहाड़ी दोस्तों के संख्या में कमी बढ़ती जा रही है. इसको जल्दी ही इहाँ से हटाना पड़ेगा नहीं तो जुम्मन, फेकू, कलसी, माया, मुरली और भी तमाम हमसे बिछड जायेंगे. इस जुदाई के जादू को अभी नहीं रोका तो कभी कुछ नहीं कर पाएंगे. विनोद के अपने ही तर्क होते. पागल कहीं की..

इसी से हम अमेरिका से लेके कश्मीर तक और धरती से भूमंडल तक की यात्रा पलक झपकते ही करेंगे.

मंजरी कहती- तु तो बस रहने ही दे.

इन्टरनेट के छुटभैया ने कितना कुछ किया है. तुझे कुछ समझ में नहीं आएगा. बेवकूफ कहीं की..

अब देखो न फेसबुक, टिवटटर, यू ट्यूब ने बहुतों को स्मार्ट बना दिया है, गोल-गोल चश्मे से झांकते आँख की पुतलियाँ कितनी आकर्षक लगती हैं. बिन हर्रे-फिटकरी के सब कितने सेक्सी हो गए हैं. भैंगी आँखों वाले भी अब मूछों पर ताव देने लगे हैं. रस्ते -डहरी पर बिन कलफ लगे ही कालर को उचकाते हुए एंठ-एंठ के चलने लगे हैं.

लडके, लड़की का चोला ओढ़ के गप्पे मार रहे हैं. खाना-पीना छोड़कर घूर-घूर के डेढ़फुटिया को निहारते हैं. इस निरखने में कब क्या हुआ कुछ नहीं पता चलता. इन मशीनों ने जिंदगी को चलता-फिरता मशीन बना दिया है. हमारी-तुम्हारी तरह थोड़े ही भेड़-बकरियों के आगे-पीछे हेर्रे-हेर्रे कर रहे हैं... वह तो लगातार हाय-हाय कर रहे हैं. कभी दिल पकड़ कर, कभी सर पकड़ कर तो कभी कमर पर बल दे रहे हैं. अकड़ी पीठ को झटका देकर हिलाने की वे नाकाम कोशिश कर रहे हैं. बिन पलक झपकाएं अपलक टक-टकी लगाये बैठे रहते हैं. एक तरफ स्थिति यह है. दूसरी तरफ इससे कम भयावह परिस्थितियां नहीं हैं. आज लोगों के पास एक दोस्त से मिलने के लिये सालों-साल फुर्सत के एक पल नहीं मिलते हैं. वहीँ आधुनिक व्यवस्थों से लैस लोग दस-बारह हजार दोस्तों से रोज़ ही बड़े आराम से, आसानी से और सुकून से खूब बातें करते हैं. वह भले ही हाय-हाय, बाय-बाय तक ही क्यों न सिमटा हो.

ज्ञान के बौद्धिक बतकही का आदान-प्रदान कुशलता पूर्वक कर रहे हैं. कभी-कभी इन बाहियात मुद्दों को लेकर इतनी भयंकर बहस छिड़ जाती कि एक-दूसरे के शक्ल से नफरत सी हो उठती. ऐसे में कोई किसी से कम नहीं होना चाहता.

इन छोटी-छोटी बातों के बीच ही उनके मध्य भयंकर लड़ाई हो जाती. पल में ही एक-दूसरे से कुट्टी कर लेते भले ही दिल में छटपटाते मगर सामने से..

विनोद के लिये मंजरी की नाराजगी बेहद खौफनाक होती. वह दिल ही दिल में डर जाता. लेकिन ऊपर से जाहिर नहीं होने देता. मानव के आँखों पर लगी अभिमान की पट्टी हर भावना पर भारी पड़ती है. यह कहना मुश्किल है. उसका मानसिक संतुलन गडबडा जाता. लेकिन बड़ी चालाकी से अपने अंदर उमड़-घुमड़ रहे स्नेह को काबू में कर लेता.

कभी - कभी अपने रूठे हुए मीत को मनाना कितना कठिन होता है. परन्तु यहाँ पर ऐसा कुछ नहीं था फिर भी एक अनजाना भय गाहे-बगाहे मन को झकझोर देता. बेबुनियादी बातों से छिड़े युद्ध के साथ ही दिन अपने अवसान के ओर बढ़ा जा रहा था.

वो ऐसे जुदा होते जैसे चाँद से चकोर, सूरज से किरण, निशा से सबेरा. अलगे दिन फिर वैसे के वैसे ही घुलमिल के बतियाते. देखने वालों को भ्रम का तगड़ा झटका लगता. अरे, कल तो ऐसे झगड़ रहे थे जैसे जमीन-जायदाद के लिये दो भाई मर कटते हैं. जर, जुरू, जमीन बवाल का कारण हमेशा रहा है. लेकिन इनकी समस्या जरा हट के है. इन्हें भी पता है कि इनके इस कोरे बक-झक से कुछ बदलने वाला नहीं है फिर भी परिचर्चा जारी रखे हुए हैं. पूर्ववत छोड़े गए बिंदु का सिरा पकड़कर फिर शुरू हो जाते. इनके इसे नादानियों से बेखबर जानवर दूर-दूर तक टहल आते क्योंकि कोई टोकने को नहीं होता. सभी को किसी की दखलअंदाजी बर्दास्त नहीं होती है. इंसान हो या जानवर, सब अपने मन के मालिक बने फिरने में ही मौज मानते हैं.

पुरानी भूली-बिसरी गलियों से गुजरते हुए वह सब बार-बार याद आ रहे थे. बचपन की अठखेलियाँ हृदय के कोरों में बेलौस कैद हैं. यौवन की मदमाती बातें भी होती थीं. बहुत बार ऐसा होता परवान चढ़ने से पहले ही किसी अन्य बात के लिये महायुद्ध छिड़ जाती. ये टीस कहीं सिने में फिलहाल के लिये दफ्न हो जाते. मीठी झिडकियों के बीच कई बार देह-देह से टकराते लेकिन मिलन से वंचित रह जाते. संस्कार की बेड़ियाँ संस्कृति की हथकडियाँ मन में आके रोके रखते. पैरों में लिपट के हथकड़ी बन जाते. प्यासी-प्यासी नज़रों से देखते ही रह जाते. भीड़ से भरे भवन में जिस तरह से एक वदन दूसरे वदन के छुवन से लरजते हैं. वैसे ही माहौल के थिरकन से शरीर बार -बार गुजरा है. जो जिस्मों के आगोश में न कर पाते. बिस्तर पर गिरते ही सपनों के वादियों में खो कर हासिल कर लेते. माथे से सरकते घूँघट के पल्लू दिल को मुँह तक ला देते. हटते परदे शर्म से निगाहों को झुका देते. नींद में ऐसे लजाते जैसे सेज पर बैठी दुलहिनिया पहलू बदलती है.

जवानी के इतने साल बीतने के बाद भी वो सरसराती यादें जेहन में सुरक्षित हैं. सनसनाती पहाड़ियों से निकलती आवाजें आज भी कानों में हौले से कुछ कहती हैं. इस शिद्दत से पुकारते हैं कि विनोद का दिल बेकाबू हो जाता है. शहर के शोर-गुल में गुम होने के बजाय सांय-सांय करते हैं. अपने माजी से इतना आगे निकल आया हूँ कि अब लौटना भी मुमकिन नहीं है.

कांपती बूंदें अपनी ओर खींच रही थीं. धीरे-धीरे वह कदम आगे बढ़ाती है. थरथराते कदम लहलहाते फसलों को स्पर्श करती हुई आगे निकल पड़ती हैं .कोमल पदों के पदचाप से घास के रेशे-रेशे कपकंपा रहे थे .हौले-हौले बारिश का पानी धरती में समा कर अपने अस्तित्व को भूला रही थीं. मिटटी के होंठों से लिपट के अठखेलियाँ कर रहीं थीं. मद्धम-मद्धम रात सरक रही थी .गुनगुनाती सुबहों की चमकीली किरणें धरा से बरजोरी कर रही थीं .पुरनम पूरवाईयां सनसना रही थीं. वृक्षों के झुरमुट से सांगोपांग करती हुई इधर ही चली आ रही थी. जहां दो जिस्म अकुला रहे थे...

बावजूद दिल की बेचैन यादें रूह को छलनी किये जा रही थीं. सोचते-सोचते जाने कब वह अपने अतीत के चौखट से बाहर आया किसी ने नहीं देखा और ना ही वह कभी दुबारा दिखाई दिया. क्या पहले प्यार की परिणिति यही है ? ऐसे कई सवाल हवाओं में तैरने लगे...

घर छुटा...

रिश्तों के अनाम गठबन्धन टूटे लेकिन दिल के अंदर जमें भावों की नदी कभी न रुकी...

आज भी आँखों में नमकीन पानी भर देते हैं...बाल-बच्चे हो गए. बाल पक गए लेकिन मंजरी की अदभुत यादें अब भी दिल में आबाद है... उस आगोश के पाए में अब भी हैं जहाँ कोई नहीं पहुँच पाता...मेरी जीवन साथी भी नहीं...मेरे तन्हाई में आकर मेरे थकन भरे शरीर, मुरझाए होंठ, लरजते गालों और माथे पर प्यार के कई चुम्बन दे जाते हैं, साथ ही सुकून के वह रंग भी कि अपने ही बाप-दादा के बनाए रिश्ते में जीते हुए भी मैं अपने उस एकांत में सदा ही मंजरी का हाथ थामें चल रहा हूँ.....चल रहा हूँ...चल रहा हूँ...

वह कहाँ है..?

कैसे है ...?

किस हाल में है..?

निरुत्तर सवालों के बीच सब कुछ साफ़-साफ़ दिख रहा होता केवल गर्दन झुकाने और पलकें मुंदने की देरी रहती. इन खबरों के बीच अतीत के दृश्य जगमगा रहे हैं...काश उन दिनों मैं वह सब कर पाता तो शायद यह झूठे रिश्तों के घुटन से बच जाता. तभी बेटी की आवाज गूंजी पापा...? किधर हो ? खाना - खा लो... यादों के जंगल कहीं जल गये... कुर्सी से उठे और फिर बोझिल क़दमों से चल दिये...यह सोचते शायद अलगे जन्म में हम साथी हैं..., क्योंकि उसके खामोश लब अब भी नजरों के मरकज हैं, लेकिन उसने **कुछ न कहा**...

❊

व्यंग्य की परिणति करुणा में होनी चाहिए
सुभाष चंदर

रायपुर :हिन्दी दिवस के अवसर पर छत्तीसगढ़ हिन्दी साहित्य मंडल ने वृंदावन हॉल में डॉ.महेन्द्र ठाकुर के व्यंग्य उपन्यास **एक डिप्टी कमिश्नर की डायरी** पर एक व्यंग्य चर्चा का आयोजन किया .इस कार्यक्रम के मुख्य अतिथि थे प्रसिद्ध पत्रकार और लेखक अनूप श्रीवास्तव और अध्यक्ष थे प्रसिद्ध व्यंग्यकार एवं हिन्दी व्यंग्य का इतिहास के लेखक सुभाष चंदर. व्यंग्य गोष्ठी में अध्यक्ष पद से बोलते हुए प्रसिद्ध व्यंग्यकार एवं आलोचक सुभाष चंदर ने कहा कि अच्छे व्यंग्य की परिणति करुणा में होनी चाहिए, तभी व्यंग्य शाश्वत बन पाता है.उन्होने कहा कि डॉ .महेन्द्र कुमार ठाकुर का व्यंग्य उपन्यास डिप्टी कमिश्नर की डायरी इस सदी का सबसे साहसिक व्यंग्य उपन्यास है जिसकी सराहना की जानी चाहिए. मुख्य अतिथि अनूप श्रीवास्तव ने कहा कि महेन्द्र ठाकुर ने यह व्यंग्य उपन्यास लिखकर सरकारी कार्यालयों में छिपे भ्रष्टाचार को करीने से अनावृत्त किया है..वह इस कृति के माध्यम से जीवन की सभी विसंगतियों पर करारी चोट करते हैं .. प्रसिद्ध शायर रज़ा हैदरी आदि उपस्थित थे.

कहानी

पितर

- डॉ. रमाशंकर शुक्ल

जन्म– 04 मई 1971, शिक्षा– एम.ए. (हिन्दी), पीएच.डी., शास्त्री, पत्रकारिता में स्नातकोत्तर डिप्लोमा प्रकाशन- विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में शताधिक लेख, कविताएं प्रकाशित। 'ब्रहमनासिका' (उपन्यास), 'ईश्वर खतरनाक है' तथा 'एक प्रेतयात्रा' (काव्य संग्रह) प्रकाशित। उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षक संघ की 2011 की पत्रिका 'स्वर्ण विहान' का संपादन। / दैनिक जागरण वाराणसी एवं जमशेदपुर में एक दशक तक वरिश्ठ उप संपादक।/ संप्रति: स्वतंत्र लेखन- साहित्य एवं पत्रकारिता। /ए.एस. जुबिली इण्टर कालेज, मीरजापुरमें हिन्दी अध्यापक/ संपर्क-पुलिस अस्पताल के पीछे, तरकापुर रोड, मीरजापुर, उत्तर प्रदेश ।
मो– 09452638649

मास्टर जी की आंखों में नींद नहीं। मन कहां तो अंटका है। पहले बाबूजी, बड़े भइया, फिर मझले भइया; एक-एक कर चले गये। तीनों की मौत की उम्र 69 से 71 के बीच ही तो थी! महाप्रयाण का तरीका भी करीब-करीब एक जैसा। बाबूजी अपने ही बनवाए मकान की छत से नींद में होने के कारण गिर पड़े। चैबीस घंटे पूरे होश-ओ-हवास में जिन्दा रहे। सबसे बतियाते रहे। आखिरी क्षण में तो कुछ नहीं बचा था, लेकिन व्यक्तित्व की कद्दावरी सलामत थी। अस्पताल में देखने वालों का जमघट लगा रहा। शाम को छह बजे ब्रेन हेमरेज हो गया। कहते हैं कि अंदरूनी हिस्से और दिमाग पर ऐसी ठांस लगी थी कि धीरे-धीरे पूरे दिमाग में फैल गयी। रात के 12 के बाद वे मौत से हार गये।

बड़े भइया को क्या कहें। भाग्यशाली थे कि अभागे? बेटा-बेटी मिलाकर दर्जन भर बच्चों के पिता होने का गौरव। बड़ी बेटी-बड़ा बेटा दूसरी पत्नी की संतानों से कहां जुड़ पाये। बड़ा बेटा तो पूरी तरह स्त्रैण और स्वार्थी निकला। कभी बाप को सम्मान नहीं दिया। दूसरी पत्नी के जिन संतानों पर उन्होंने जीवन हवन कर दिया, जीते जी किसी का विवाह अपनी आंखों से न देख पाये। बेटा पीसीएस लोवर सबार्डिनेट में चयनित तो हो गया, लेकिन कोई लड़की ही पसंद न आती। कि पद के हिसाब से दहेज ही न मिलता था। नौकरी क्या लगी, बाप को परे कर खुद निर्णय लेने शुरू कर दिया। क्या पता इसी की धसक में बड़े भइया को ब्रेन हेमरेज हो गया हो?

अचानक कलेजे में कुछ करका। बड़े भइया की मौत में तो ठीक से शरीक भी नहीं हो सका। मास्टर साहब रुआंसे हो गये। केवल बीएचयू में देखकर चले आये थे। नौकरी अहम थी कि जीवन भर से चली आ रही कलह ने मन से भ्रातृप्रेम ही सुखा डाला था? रोज ही तो झगड़े होते थे। कटोरी-चम्मच जैसा बड़की भौजी का दिल। चवन्नी का भी नुकसान हुआ कि बड़की भौजी भनभनाने लगतीं। दर्जन भर बच्चे इसके बाद बर्रे हो जाते। लगते चीख-चीख कर गरियाने। फिर जो तमाशा शुरू होता तो देखने वालों की भीड़ लग जाती। मुंह से जो-जो गोले दागे जाते कि मन भन्ना जाता। ऐसे में चुप रहने से हानि के सिवा लाभ तो होता नहीं। हार कर बोलना पड़ता। फिर क्या, बड़की भौजी नाच-नाच, धोती उठा-उठा, घृणित से घृणित आरोप लगा-लगा जो-जो प्रहार करतीं कि तबियत ग्लानि और क्रोध से जल जाती। एक बार रार शुरू होती तो फिर दसियों दिन उसका पटाक्षेप न होता।

मास्टर जी अपनी पत्नी से भी तो पूरी तरह हार गये थे। इसने कभी समझा ही नहीं कि वह एक पढ़े-लिखे शिक्षक वह भी लेक्चरर की पत्नी है। बड़की भौजी जब शुरू होतीं तो यह भी घुटी हुई खिलाड़ी की तरह उनका मुंहतोड़ जवाब देती। जवाब ही क्यों, कई बार भारी पड़ जाती। कितनी ही बार ऐसा हुआ है, जब बड़की भौजी और उसके बर्रों को मैदान छोड़कर भागना पड़ा है।

अब छोड़ों भी इन बातों को। रात गयी बात गयी। बीते दिनों की बातें याद न किया जाय तो ही अच्छा। मास्टर जी करवट बदल कर सोने का उपक्रम करने लगे। लेकिन भइया की मौत को नहीं बिसार पाये।

शाम का समय था। एक चीख घर के एक कमरे से निकलकर पूरे माहौल में हाहाकार मचा दी। क्या हुआ! क्या हुआ!..... जो जहां था, दौड़ पड़ा। मझली भौजी अपने कच्चा मकान में थीं। सबसे पहले वही पहुंची। हालांकि बड़की भौजी ने उन्हें तीन रोज पहले कजिया (झगड़ा) में कसम धरा दी थीं- 'तीनों बेटों का खून पीना, जो हमारे पक्का की दहलीज डांकना।' लेकिन मझली भौजी मोम सा दिल गल कर बहने लगा। बदहवाश दौड़ते हुए दहलीज पार कर गयीं। देखती हैं तो बड़का भइया के मुंह से लार-गजार निकल रहा है। अधखुली आंखें किसी भयावह आगत का संकेत दे रही हैं। बिस्तर पर टट्टी -पेशाब फैल गया है।

मझली भौजी की आंखों से आंसू निकल पड़े, 'अमल की अम्मा जल्दी करो, डाकदर के यहां ले चलो।' बड़की भौजी को कहां होश। मझली भौजी ही भागीं और बड़े बेटे को लेकर फिर दहलीज पार कर गयीं। भूल गयीं कि दहलीज पार कर रहे हैं कि तीनों बेटों का खून पी रहे हैं।

आनन-फानन तय हुआ, जिला अस्पताल ले चलो। गांव में यही तो दिक्कत है कि कोई अनहोनी हो जाये और क्या मजाल कि कोई सवारी मिल जाये। घंटों की अफरा-तफरी के बाद एक आटो मिल सका। बड़े डाक्टर ने देखते ही जवाब दे दिया-'यहां इलाज संभव नहीं। बीएचयू ले जाइए।' प्राइवेट गाड़ी मंगाई गयी। मझले भइया, बड़की भौजी, मझली भौजी, मझली भौजी का बड़ा बेटा और कक्का के बेटे के साथ मास्टर जी भी सवार होकर बीएचयू पहुंचे। बड़े भइया की हालत और खराब हो चुकी थी। उन्हें होश न था। चार जन उठाकर इमरजंसी में पहुंचे। डाक्टर ने देखा तो साफ-साफ इनकार कर दिया- 'ब्रेन हेमरेज है। अस्सी परसेंट दिमाग बेकार हो चुका है। आप कहो तो जिला अस्पताल रेफर कर दूं। जितनी देर सांस चल रही है, बस उसे ही ईश्वर की कृपा समझिए।'

बड़की भौजी तो धार-धार रोती रहीं। न कुछ सुन पा रही थीं और न ही साहस था। मझली भौजी और उनके बेटे में कहां से तो इतनी ताकत आ गयी थी कि वे लगातार दौड़ रहे थे। रास्ते में फोन करके अपनी बेटी-दामाद को भी बुला लिये। उनका पूरा परिवार भाग-दौड़ कर रहा था। दवा-दरपन से लेकर डाक्टर की चिरौरी तक इसी परिवार के जिम्मे। मास्टर जी के भीतर तब भी घर का कलह खदबदा रहा था। वे बाहर खड़े रहे। कर्तव्य-अकर्तव्य के द्वंद्व से जूझते हुए। हर बार तो यही होता है। कोई भी मामला होता है, अमल समेत बड़की भौजी चीखने लगते हैं। संकट खत्म तो किया-दिया भी साफ।

फिलहाल डाक्टर ने एडमिट करने से मना कर दिया। अमल को गांव से चलते समय ही फोन कर दिया गया था, लेकिन दूर का रास्ता किसी अनहोनी की सूचना से छोटा थोड़े ही हो जाता है। नौ बजे रात अमल पहुंचे थे। इंस्पेक्टर रैंक जरूर थी, मगर हमेशा बोलेरो से ही आते-जाते थे। साथ में चार-पांच मुस्टंड टाइप के लोग भी रहते थे। इन लोगों को वे इन्हीं मास्टर जी और मझले भइया के परिवार वालों पर रौब गालिब करने के लिए लाते। अमल बोलेरो से उतरे तो मास्टर जी या मझले काका को पालागी करना तक उचित न समझे। सीधे इमरजेंसी कक्ष में धड़धड़ाते जा पहुंचे। आज उनके साथ ड्राइवर के अलावा कोई न था। शायद सबको इकट्ठा करने का समय उन्हें न मिल पाया था। पिता को जमीन पर बिछी चादर पर टूटती सांसों के साथ देखा तो आपा खो बैठे। दौड़कर इमरजेंसी प्रभारी के पास पहुंचे, 'ये क्या मजाक है? आप इन्हें एडमिट क्यों नहीं करते? आपको पैसा ही चाहिए न? चलिए जितना मांगेंगे, उतना दूंगा, पर आप इन्हें फौरन एडमिट कीजिए।'

डाक्टर तिलमिला गया। अमल को सर से पांव तक घूरा। क्रोध जब्त करते हुए बोला-'बात करने की तमीज रखो। कितना दे सकते हो कि रुपये से तौलने आ पहुंचे। पेसेंट की हालत नियंत्रण से बाहर है। एडमिट कर लेना पर्याप्त नहीं। बचेंगे नहीं, क्योंकि अस्सी परसेंट दिमाग बेकार हो चुका है। भगवान का नाम लो। प्राथमिक इलाज चल रहा है। बच गये तो ऊपर वाले की मर्जी। रही बात एडमिट करने की तो हमारे पास फिलहाल एक भी बेड नहीं खाली है।'

अमल उखड़ गये, 'क्या समझते हैं मुझको। सप्लाई आफिसर हूं, कोई झुग्गी-झोपड़ी का चित्थड़ नहीं कि यूं ही टरका दोगे।' वे आप से अब तुम की ओर बढ़ रहे थे। डाक्टर चिढ़ गया, 'कितने आइएएस-पीसीएस और रसूख वाले दिन भर यहां गिड़गिड़ाते रहते हैं। हमारे लिए बड़े-छोटे का कोई मतलब नहीं। डाक्टर के लिए हर रोगी और उसके परिजन केवल एक पीड़ित होते हैं। इसके अलावा और कुछ नहीं। यह धौंस-पट्टी तुम्हारे ही विभाग में चलता होगा।'

अमल का चेहरा उतर गया। उनका क्रोध अब झुंझलाहट में बदल गया। वे भीतर से गहरी हार महसूस कर रहे थे। असहाय हो बाहर के बरामदे में आ खड़े हुए। ऐसे मुहाने पर खड़े थे, जहां रुपये की कोई कीमत न थी। पिता के लिए सब कुछ करने को तैयार, पर उस 'सब कुछ' की यहां कोई दरकार नहीं। पैसा आखिरी विकल्प नहीं। आखिरी विकल्प तो मौत ही है और मौत का कोई विकल्प नहीं। उनका सारा अस्तित्व जैसे निचुड़ कर बह गया और वे गुठलियों की तरह खुद से जमीन पर फेंक दिये गये। पान के पीकों से सनी दीवार से सरकते हुए धम्म से जमीन पर बैठ गये।

000

मास्टर जी रात को ही लौट आये। कालेज में खास काम के बहाने।

गौरव तब जमशेदपुर में ही थे। दैनिक जागरण में सीनियर सब एडिटर। महाराष्ट्र वाली दीदी का सुबह के नौ बजे फोन आया-'कुछ सुना तुमने?'

'नहीं, क्या?'

'बड़े पिताजी को ब्रेन हेमरेज हो गया है। रात से ही बीएचयू की इमरजेंसी में जमीन पर ही पड़े हैं। डाक्टर एडमिट ही नहीं कर रहा है। अमल परेशान हैं। अम्मा वगैरह वही पर हैं। सबका रो-रोकर बुरा हाल है। लगता है कि बचेंगे नहीं। हो सके तो उन्हें एडमिट करवा दो।'

गौरव काफी देर तक गुमसुम रहे। कितना फासला बन गया है। अपने घर में इतनी बड़ी घटना हो गयी और कोई सूचित करना तक जरूरी न समझा।

बड़े पिता के रिश्ते की गरमाहट तो कभी महसूसी न थी। हमेशा उनका परिवार प्रतिद्वंद्वी बना हमले करता रहा। कभी उनके दर्जन भर बच्चे एक साथ हमला कर पेड़ उखाड़ देते तो कभी खपरैल पर पत्थर बरसाने लगते। अमल ने ही तो धोखे से ऊंचे पत्थर से धक्का देकर गौरव को मारने की कोशिश की थी। पिताजी तक को इन लोगों ने मारा-पीटा। मेरे विवाह के बाद सबसे पहले तो हमारे परिवार को अछूत इन्हीं लोगों ने माना। इनकी कौन-कौन सी बातें तो मां ने नहीं बताई हैं। छोड़ो इन बातों को। ये अवसर यह सब सोचने का नहीं। किसी पर विपत्ति आये तो उसके अच्छे कार्यों को याद करना चाहिए। गौरव की हमेशा से यही आदत रही है। इसी आधार पर वे हमेशा दुश्मन से भी दुश्मन व्यक्ति के लिए दौड़ पड़ते थे। कि उनके परिवार के सभी सदस्यों का ही यही हाल था। अमल से बात किये अर्सा बीत चुका था, फिर भी उनसे फोन पर बात की। आज ठसक की बजाय अमल पिघले से मालूम हुए। स्वर में गिड़गिड़ाहट थी। गौरव बेचैन हो गये। बड़े पिता का 25 साल पुराना अक्ष ताजा हो गया। और दिन होता तो एसटीडी काल से डरते, पर आज मितव्ययिता ढेर हो गयी थी। बनारस के मित्रों को खंगालना शुरू किया। कोई शहर से बाहर तो कोई आफिस में। दैनिक जागरण के पवन सिंह की याद आयी। उन्हें बीएचयू का ही बीट मिला था।

वे दफ्तर से देर रात आये थे और अभी-अभी सो कर उठे थे। चाय पी रहे थे कि गौरव की काल पहुंच गयी, 'पवन भाई, मेरे बड़े पिता को बचा लीजिए। डाक्टर एडमिट नहीं कर रहा। आज आप ही गौरव बन जाइए, प्लीज।'

घंटे भर बाद पवन का फोन आया, 'भाई साहब, एडमिट करवा दिया हूं। आवश्यक दवाएं अभी लाकर दिया हूं और इलाज शुरू हो गया है। आगे भगवान की मर्जी।'

हालांकि एडमिट हो जाने का मतलब बड़े पिता का ठीक हो जाना न था, फिर भी गौरव को संतुष्टि थी कि चलो बड़े बाप की खातिर कुछ तो कर पाया।

लेकिन होनी को कौन टाल सकता है, शाम साढ़े चार बजे अमल के पिताजी चल बसे। मास्टर जी चिहुंक पड़े। एक भयावह स्वप्न का मध्यांतर। कैसी तो विडंबना थी, उस वक्त। जिस बड़े भाई की गोद में मचलते हुए बचपन की दहलीज पार की, उसके दुनिया से विदा होने पर ठीक से शोक में भी शरीक न हो सका। भइया का प्यार हार गया, घर का कलह जीत गया। मास्टर जी धर्म भीरुता और सामाजिक प्रभाव के कारण संस्कार कर्मों में तो शामिल हो गये, पर तेरही में भोजन को जी न किया। दुधमुही का भात भी न ग्रहण किया। अपने घर अलग से आलू उबलवाकर खाये। मझले भइया को भी तो दुधमुंही के भात के लिए नहीं बुलाया गया। कैसे बुलाते, अछूत जो हो चुके थे। अब बेटा गैर विरादरी की लड़की से विवाह कर लिया है, भले ही घर से उसका नाता टूट गया हो, लेकिन है तो उन्हीं का रक्त। एक ही बीज के तीन जाये मौत के समय भी किस तरह बिखर गये। बड़की भौजी दाह संस्कार से लौटीं तो मझली भौजी को सुना गयीं, 'अब वे तो चले गये, पर बहिन हमारे भी दस ठो बाल-बच्चे हैं। उनका भी शादी-ब्याह करना है। इसलिए हमारा-तुम्हारा केवल पूड़ी का संबंध रहेगा। तेरही में आ जाना सब लोग।'

मझले भइया ने सुना तो आंखें छलक पड़ीं। कैसी औरत से ब्याह कर लाए भइया। और फिर उनका क्या दोष? आखिर इस भिखारी की बेटी को मेरी ही पत्नी ने अपनी मां से भइया

के लिए मांगा था। विवाह के बाद आयी थी तो दहेज के रूप में इसके बक्षे में एक पाव मिर्ची भर थी।
तेरही बीत गयी, पर दोनों में से किसी भाई का परिवार सरीक न हुआ। हां, बाहर वाले न जान पायें। सारा काम दोनों जन के परिवारों ने मिलकर कर-करा दिया।
रात के बारह बज गये हैं। मास्टर जी नींद के लिए बेचैन हैं, पर मानस चलचित्र रुकने का नाम नहीं लेता। आज मड़हे में वे अकेले ही हैं। पत्नी घर में ही सो गयी हैं। मसहरी में दुबके पड़े हैं, लेकिन भीतर जैसे कोई खौफ है जो रह-रहकर किसी अज्ञात की आशंका में पसीने से नहला दे रहा है। हाथ-पांव सुन्न हो गये हैं। कि तभी क्लाक् क्लाक् क्लाक् की आवाज करता पखेरू एक छोर से दूसरे छोर का चक्कर लगाने लगा। मास्टर जी चौंके, क्या था? फिर सन्नाटा घिर गया। कुछ ही पल बीते कि अचानक दुबान पट्टी की ओर से किसी कुत्ते की रोने की आवाज आई- 'ओं ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ। फिर बभनपट्टी, चमरान, पसियान की तरफ के भी कुत्ते समवेत शुरू हो गये- ओं ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ।
मास्टर जी सिहर गये, 'हे नारायण, अब कौन अशुभ होने वाला है?' उन्हें कुछ याद आया। उस रात भी तो ऐसा ही मंजर सामने उपस्थित हुआ था। मझले भइया गोधूली में सिवान की ओर शौच करने गये। बीसेक मिनट ही बीते थे कि चैहान बस्ती का लड़का भागता हुआ आया था- 'चच्चा, दउड़। पुजारी बड़का बाबू उही खेते में गिरा पड़ा हयेन।'
घर लोग दौड़े। पुजारी भइया शौच कर चुके थे। खड़े होते समय या फिर शौच के समय ही गिर गये थे। उसके बाद न उठे। लोग ही उठा कर दुआरे ले आये। गौरव को फोन लगाया गया, नेटवर्क खराब। बात न हो पायी। छोटे ने इलाहाबाद से फोन किया, तब कहीं जाकर गौरव को मालूम हुआ। अपने जिले में शिक्षक की नौकरी करते दो साल हो गये थे, लेकिन उन्हें अखबार का चस्का न छूटा था। अमर उजाला में ही बैठे थे, जब छोटे भाई ने यह खबर दी। होश उड़ गये। समझ न आता क्या करें। डिप्रेशन की बीमारी ने याददास्त कमजोर कर दी है। साइकिल छोड़ पैदल चल दिये। चौराहे पर एक मित्र से हजार रुपये उधार लिए, पर बाइक या कार लेना भूल गये। मामा के लड़के की याद आयी। गिड़गिड़ाए, 'भइया आप पास में हो। कोई साधन लेकर जल्दी पहुंचो, हम अस्पताल में इंतजाम करते हैं।
चालीस मिनट बाद पिताजी को लेकर सभी पहुंचे। डाक्टर सिंह ने पूरी जांच की। करीब दो घंटे एडमिट रखे थे। सांस के स्थान पर हंकड़ा चल रहा था। मुंह खुला था। लार रह-रह बह आती। मझली भौजी गौरव के कमरे पर ही थीं। उन्हें छिपाकर बुलाया गया। देखती क्या हैं कि तप और देवत्व की प्रतिमूर्ति आज अक्रोध बिस्तर पर ढहा पड़ा है। पति के चरणों पर गिर पड़ीं- 'ये क्या कर दिये गौरव के बापू। कल हमें जबर्दस्ती भेज दिये कि जाकर बेटे का सुख ले लो और अपने दुनिया छोड़कर जाने की तैयारी कर ली। गौरव का मन-मस्तिष्क थरथरा रहा है। घबराहट में जहां-तहां धम्म से बैठ जा रहे। बड़े पुत्र बबऊ मन के पक्के थे। हिम्मत रखकर सबको संभाल रहे थे। तभी डाक्टर ने बुलाया। बोले- 'देखिए, कारण साफ है, ब्रेन हेमरेज हुआ है। सूगर और रक्तचाप बहुत ज्यादा हो चुका है। हमारे पास इलाज के संसाधन नहीं हैं, इसलिए बेहतर होगा कि डाक्टर प्रसाद के अस्पताल में एडमिट कर दीजिए।'
सब भागे डा. प्रसाद के यहां। उन्होंने नब्ज देखी और खामोश हो गये। घड़का वैसे ही चल रहा था। कुछ देर बाद बोले- 'मैं बाहर जा रहा हूं। आप लोग इन्हें जिला अस्पताल ले जाइये। वहीं एडमिट कर दीजिए।'
गौरव को शंका हुई, 'डाक्टर साहब, आप सचमुच बाहर जा रहे हैं या फिर कोई और बात है?'
इसका उन्होंने कोई जवाब न दिया। पीछे मुड़ गये। गौरव घिघियाए 'अगर कोई ज्यादा सीरियस बात है तो हम इन्हें बीएचयू या फिर कहीं और ले जायें।'
इस बार डाक्टर ने खुलकर समझाया- 'ऐसा है कि इन्हें ब्रेन हेमरेज हुआ है। भगवान का नाम लीजिए, वही बचा सकेगा। बनारस पहुंचने में करीब तीन घंटे तो लग ही जायेंगे। इतने में शुगर और ब्लड प्रेशर ज्यादा हो सकता है। अच्छा होगा कि जिला अस्पताल ले जाइए। कुछ नियंत्रित हो जाये तो कहीं जाइए।'
गौरव को यकीन हो गया कि पिता की आखिरी सांस है। वे टूट गये। मन से निकला, 'पिताजी जिसे तुम अपनी ताकत मानते थे, देखो कैसे वह तुम्हारी मौत से हार रहा है।' गौरव हमेशा से भावुक। किसी का खून रिसना भी देख लें तो चक्कर आ जाये। आज तो जन्मदाता ही सिर से हाथ खींचे जा रहे। टूट गये और फिर जमीन पर धम्म से बैठ गये। मित्रों ने समझाने की कोशिश की, पर मन कहां माने। मां ने आंसू पोछ लिया। बबऊ ने अंकवार भर लिया-'कुछ नहीं हुआ रे पगला। तू चल अस्पताल, पिताजी ठीक हो जायेंगे।' मास्टर जी खंभे से छिपकर आंसू पोछ लिये। फिर सामने आकर बिगड़ पड़े।
उस दिन संयोग ही था कि समाचार कवर करने गये रिपोर्टरों की पूरी टीम बैठी थी। इसलिए इलाज में कोताही न हुई। अन्यथा इस अस्पताल में लोग मरने के लिए ही आते हैं। गौरव की हिम्मत चिकित्सा कक्ष के भीतर जाने की न होती थी। बाहर दीवार की टेक लिए लगातार रो रहे थे। मास्टर जी भी आकर बगल में बैठ गये। करीब घंटे भर बाद डा. आनंद ने बताया कि शुगर डाउन हो गया है, ईश्वर चाहेगा तो बीपी भी नियंत्रित हो जायेगी।
राहत वाली खबर सुन मास्टर जी को बोध हुआ। मझली भौजी ने देवर का मुरझाया चेहरा देखा तो प्यार उमड़ आया। बोली, 'बबुआ यहां रहकर आप लोग क्या कीजिएगा। घर चले जाइए। अब तो भगवान ही नइया का खेवनहार है।'
रात के ग्यारह बज गये। मित्र-परिचित और मुलाकाती एक-एक कर घरों को लौटने लगे। पूरा वार्ड खाली हो गया। परिवार के छह-सात लोगों के अलावा कोई न बचा था। गौरव को नींद की दवा खिला कर सुला दिया गया।
मास्टर जी को याद आता है। दूसरे दिन सोमवार को सूरज की लाली फूट ही रही थी कि फोन आ गया। बबऊ ने हिचकियों में बताया कि महराजगंज पहुंचने के पहले ही पिताजी ने संसार छोड़ दिया।' मास्टर जी के मुंह से उफ् निकला, 'शायद सूर्योदय का इंतजार कर रहे थे।
घर में कोहराम मच गया। पुजारी भइया का घर कांप उठा। मानो एक तेज सन्न से आकाश की ओर उड़ गया हो और सुबह के उजाले में कच्चा दरबा अंधेरे से घिर गया।
गांव में शोक का अपना तरीका होता है। बिना दुःख के भी महिलाएं धार-धार रोती हैं। कि रोने का अभिनय करती हैं। पूरे लय में, तुकों के साथ। पता ही नहीं लगता कि शोक का क्रंदन है या फिर कविता का निर्माण।
मगर नहीं, मास्टर जी की आंखों से आंसू न निकले। एक हूक थी, जो सीधे कलेजे में धंस गयी थी। उन्हें बचपन याद आया। दस साल बड़े मझले भइया का वात्सल्य झांकने लगा। कितने रूप पसर गये आंखों के सामने- गोद में लेकर खेलाते मझले भइया, कंधे पर बैठाकर आम के टिकोरे तोड़वाते भइया, ससुराल से मिले पैसों को चुपके से पढ़ने के लिए पकड़ाते भइया, खेल में पीटने वाले को लतियाते भइया, सिर पर

लकड़ी का गठ्ठर लाद इलाहाबाद रूम पर पहुंचाते भइया.....पुजारी भइया,....भइया....। बहुत बाद में अलगौझी के बाद भी आंख के आपरेषन में दिन-रात एक कर सेवा में तल्लीन मझले भइया की छवि अधेड़ में भी गहरे वात्सल्य से भिंगोती-सी नजर आयी।

अरे, अरे? मास्टर जी रो रहे हैं? न् नही, मास्टर जी रो नहीं रहे। फिर आंखों की कोरों से ये आंसू कैसे ढुलक आये। उन्होंने झट से ऐसे पोछा कि कोई देख न ले। आंखें बंद कर ली। पूरी सांस खींची और उच्छवास छोड़े-'हे नारायण, मझले भइया, जहां हो उन्हें सांसारिकता से मुक्त रखना। वे संत थे, उन्हें मुक्ति प्रदान करना।'

मास्टर जी अब इन पुरानी बातों को नहीं सोचेंगे, उन्होंने तय कर लिया। आंख बंद किये और बायीं करवट लेट गये। हनुमान चालीसा पढ़ रहे हैं। लेकिन, चालीसा में माई कहां से आ गयी? फिर वही धारा?

माई आई है और सिर पर हाथ फेरते निहार रही है। कहती है, 'तूं ही अब इस खानदान का मुखिया। सबको सहेज कर रखना।' यह कौन है? बड़े भइया की बड़ी बहू। लट बिखराये, चीख रही है-'हमें गया दो, हमें गया दो।'

पाँव के पैताने दादा कब से आ गये? अरे रुको तो क्या कह रहे हो सब?

एक शोर उठ रहा है- 'हमें गया ले चलो। गया चलो.....गया चलो.....। अपने जीते जी हमें गया पहुंचा दो।'

अभी उन्हें कोई जवाब देते कि खुद की बहू अधजली अवस्था में आकर चीख रही है, 'ठीक है गुस्से में ही आग लगा ली, पर अब मेरे पर रहम करो। हमें मुक्ति दो। नहीं तो.....।'

'नहीं तो?'

'घर भर को लड़ाते रहेंगे। मारते रहेंगे, कलपाते रहेंगे।'

मास्टर जी अकबका गये। वे उठकर भागना चाहते हैं, पर कदम आगे नहीं बढ़ पाते। सामने से सौ वर्षीया कोई बूढ़ी महिला लाठी टेकते चली आ रही है। कौन है यह? मास्टर जी पहचानने की कोशिश करते हैं, 'अरे यह तो आजी है।' सबसे पहले माई ने पैर छुए। फिर एक-एक कर सभी ने आजी के पैरों पर सिर टिका दिये। हमारे खानदान की आदि माता। मास्टर जी हतप्रभ हैं। आखिर आज कौन सी साइत है कि ये सभी एक-एक कर जमा हो रहे हैं। वे पैर छूने को झुके ही थे कि चारों तरफ चीखें ही चीखें– उनकी खुद की प्रसव के बाद ही दिवंगत हो चुकी बेटी, श्मशान घाट से प्रवाहित धारा से निकलकर आते हुए दो बेटे, बड़े भाई का बेटा, मझले भइया की बेटी, कक्का के परिवार के दर्जनों दिवंगत चेहरे, दादा के दादा, दादा के पिता, काका- कैसे-कैसे चेहरे लिए कितने-कितने लोग जमा हो गये। एक हरहराती आवाज लगातार गूंज रही है-'हमें मुक्ति दो, हमें मुक्ति दो।' मास्टर जी थर-थर कांप रहे हैं। सबको चुप कराना चाहते हैं, पर मुंह से आवाज नहीं निकलती। एक बवंडर सा उठ रहा है। उसमें पत्तियों की मानिंद आत्माएं उमड़-घुमड़ रही हैं। चीख रही हैं, रो रही हैं, अट्टहास कर रही हैं। मास्टर जी पसीने-पसीने हो रहे हैं। अचानक उन्होंने अपने कान बंद कर लिए। वे अब खुद चीख रहे हैं। लगातार चीख रहे हैं। कि आंख खुल गयी।

उन्होंने देखा कि वे अकेले हैं। उनके आसपास कोई आत्मा नहीं है। पर, उनका मन इस सच को मानने को तैयार नहीं। शरीर कांप रहा है। गुलाबी जाड़ा है, फिर भी पसीने से रजाई भींगी हुई है। सीने की धड़कन साफ-साफ धड़कते हुए सुनाई पड़ रही है। आंखों से नींद गायब हो गयी। पास में पड़ी मोबाइल पर नजर डाली तो चार बज रहे थे। हाथ जोड़ लिए, हे नारायण रक्षा करना। सब शुभ-शुभ बीते। भोर का सपना झूठा नहीं होता।

उस दिन वे भोर में ही नित्यक्रिया से निवृत्त हो लिए। ठंड कंपा रही थी, इसलिए रजाई ओढ़कर माला फेरने लगे। कि सुबह का इंतजार करते रहे।

उम्र के साथ मास्टर जी की जीवटता भी ढह गयी। बड़े बेटे की बेकारी, दुर्व्यवहार, बड़ी बहू का हादसा, कारावास की सजा, नयी बहू का भी कर्कसा बर्ताव, बेटी का वैधव्य, छोटे बेटे का अनिश्चित भविष्य– सबने मिलाकर उन्हें अंदर से तोड़ दिया है। छोटी सी बात पर भी कैसे विचलित हो जाते हैं। आज तो रात में जो कुछ घटा है, वह दिमाग में हजार बिजलियां फोड़ रहा है।

सूरज की लाली निकलते ही उन्होंने मझली, बड़ी भौजी के साथ ही पत्नी को भी बुला भेजा। बड़े बेटे, बड़े भइया के सबसे बड़े बेटे और बबऊ को पास में बैठा लिए। सब परेशान कि सबेरे ही सबेरे इन्हें क्या हो गया है? मास्टर जी की चुप्पी सबको एक अज्ञात भय की ओर खींचे जा रही है। फिर कुछ होने वाला है क्या? पुजारी जी भी तो ऐसे ही एक दिन पहले सबको बैठाकर समझा रहे थे। अकबका कर मझली भौजी ने ही पूछा-'क्या हुआ बबुआ? इत्ते सबेरे सबको बुला लिये हो, तबियत तो ठीक है?'

मास्टर जी ने बायें हाथ से दाहिने हाथ के शर्ट की बांह मोड़ी और सिर रगड़ते हुए कुछ बोलने को हुए, फिर चुप हो गये। बड़की भौजी ने टोका, 'बबुआ, कौनो बात हो तो बता दो।' कहते हुए उनकी आंखों से आंसू निकल पड़े।

मास्टर जी ने रात के वाकये को सुनाना शुरू किया तो सबके रोंगटे खड़े हो गये। एक सिहरन सी दौड़ गयी।

मास्टर जी ने आखिर में फैसला सुना दिया, 'अब हमें गया जाना ही होगा। विज्ञान क्या कहता है, इस पर सिर खपाने की जरूरत नहीं। तीन पीढ़ी से कोई गया नहीं गया। आत्माएं भटक रही हैं, तो उन्हें मुक्ति दिलानी ही होगी।'

मझली भौजी ने समर्थन किया, 'तभी तो बबुआ किसी का दिमाग ठिकाने नहीं रहता। हर कोई झगड़ा-मार में लगा रहता है।'

बड़की भौजी ने भी समर्थन किया, 'ठीकै कहती हो बहिन। तभी तो लड़िकन बीमार रहते हैं। हमारे बच्चों को जो रतौंधी आती है तो शायद इसी कारण से।'

और कोई अवसर होता तो मस्टराइन लाल हो जातीं, पर पितरों की शांति के मामले में वे दखल न देंगी। तीनों भाइयों के तीनों बड़े बेटों ने भी मुहर लगा दी। मास्टर जी को तसल्ली हो गयी।

सेवानिवृत्ति के बाद मुश्किल से बच पाये थोड़े से रुपयों को उन्होंने इमरजेंसी के लिए बचा रखा था। क्या पता छोटे बेटे की नौकरी में ही जरूरत आ पड़े। इसीलिए घर की मरम्मत तक न कराई। खपरैल मड़हा को बैठक नहीं बनवाया। लेकिन आज पितर मांग रहे हैं तो कुछ सोच कर मांग रहे हैं। आखिर सारी संपत्ति तो उन्हीं की है। संपत्ति लिये हैं तो शांति प्रदान करना भी उन्हीं का दायित्व बनता है।

मास्टर जी बैंक चले गये। पचास हजार रुपये निकाल लाये। रास्ते में पंडित जी से भागवत कथा की साइत भी तय कर लिया। भाइयों के बेटे से कुछ न मांगेंगे। कोई सहयोग करना चाहता है तो मनाही नहीं।

सारा इंतजाम तो मास्टर जी कर लिए थे, पर मकान छोटा पड़ रहा था। पचास लोग तो कम से कम कथा में शामिल होंगे ही। तय हुआ कि अमल के हिस्से वाले मकान में ही कथा हो।

आखिर घर की नींव तो एक ही है। इससे दोनों घर पवित्र हो जायेंगे।

अपनी शादी में अमल ने मास्टर जी को नहीं पूछा था। काहे कि मास्टर जी उनके पिता की दुधमुही तक में शामिल न हुए थे। लेकिन अबकी जब मझली बहन का विवाह हुआ तो मास्टर जी के ही हाथ सारा काम पूरा कराये। हां इसमें बबऊ के घर वालों को शामिल न किया गया था। गौरव ने कुजात से विवाह किया है तो उनका परिवार कहां शुद्ध रह गया। तभी तो गौरव के पिता की दुधमुही से लेकर तेरही तक अमल का परिवार शामिल नहीं हुआ। एक बात और भी थी कि यदि बबऊ के परिवार को शामिल करते तो छोटे दादा के परिवार के लोग नाराज हो जाते। पुजारी जी की मौत में दसवें पर उनके परिवार ने बाल बनवाने तक से इनकार कर दिया था। और तो और पंडितजी ने सारा क्रिया-कर्म कराया, लेकिन क्या मजाल कि एक भेली गुड़ भी खाकर पानी पिये हों। ऐसे में पूड़ी भात रखने की सोचना भी खतरे से खाली न था।

मास्टर जी के सामने धर्मसंकट है। तब की बात दूसरी थी, लेकिन गया में तो सारे पितर शामिल हैं। गोत्र, प्रवर, पिण्ड– सभी तो एक ही हैं। एक भी पितर छूट गया तो बाद में परेशान करेगा। शास्त्र की बातों को जो लोग अनदेखा करते हैं, उन्हें साक्षात् नरक मिलता है।

मास्टर जी ने बबऊ को बुला भेजा। गांव में आजकल बबऊ बाबाजी के नाम से धीरे-धीरे विख्यात हो रहे हैं। उन्होंने गाय के खुर के बराबर एक हाथ की लंबी चोटी बढ़ा ली है। माथे पर बड़ा सा रोली का टिप्पा मारते हैं। कभी-कभी दुकान से ज्यादा फुरसत रहती है तो त्रिपुण्ड भी लगाते हैं। घर-द्वार चप्पल की बजाय खड़ाऊ पहनते हैं। नियम से शंख फूंककर ऊंची आवाज में रामरक्षा स्त्रोत्र का उच्चारण करते हैं। पत्रा में साइत दिखाने के लिए गांव वाले अब उन्हीं के पास आते हैं। मझली भौजी को भी ठीक लगता है कि चलो बाप के नक्षे कदम पर कोई तो आगे बढ़ा। पिता के देहांत पर बबऊ ने लोगों की जुबान से इन्हीं गुणों की तारीफें सुनी थी। सो, गुणों की इस थाती को उन्होंने धीरे-धीरे आखिरकार सहेज ही लिया।

मास्टर जी ने पूजा का सारा इंतजाम बबऊ के हवाले कर दिया। साथ ही यह भी समझा दिया कि अपनी मां, बहू, बेटी– सबको कथा में षामिल होने के लिए बोल दें। बबऊ ने आज्ञाकारी बालक की तरह चाचा की बातें मान लीं।

अमल के बाहर वाले अहाते में ब्राह्मणपीठ और वेदी आदि का निर्माण बबऊ ने ऐसा किया कि खुद पंडित जी हतप्रभ रह गये। कथा का समय दोपहर एक से पांच बजे तक का रखा गया।

भागवत सप्ताह में ज्ञानी कथावाचक का तो महत्व होता ही है, लेकिन यदि अपने पुरोहित परिवार से कोई कथा सुनाने की सामर्थ्य रखता है तो सौ विद्वानों से भी श्रेष्ठ है। ऐसा मास्टर जी का मानना है। इसीलिए पुरोहित परिवार के ही नवोदित पंडितों को उन्होंने इसका जिम्मा सौंपा।

मास्टर जी ने पूरी पट्टीदारी को सबेरे ही सप्ताह सुनने का न्योता दे दिया। दुबान पट्टी का जिम्मा बड़े बेटे को सौंपा। उसका उधर से ज्यादा रब्त-जब्त रहता है।

एक बजते-बजते दुवार पर गांव-घर के लोग जमा हो गये। अमल ने बड़ी सी दरी अहाते में बिछवा दी थी। डाक्टर शंकराचार्य के सबसे करीबी शिष्य हैं। कभी किसी के यहां नहीं उठते-बैठते। उनका मानना है कि सदगुरु की कृपा से उन्हें आत्मज्ञान हो चुका है। गांव के लोग मूर्ख हैं, इसलिए उनसे बात नहीं करनी चाहिए। पट्टीदारी में कोई कितना भी बड़ा पद पा जाये, उनकी निगाह में उनके बेटों से छोटा ही होगा। वे अक्सर उच्छवास भरते हुए 'शिवोऽहम्' कहते। अध्यात्म विद्या की पराकाष्ठा का बोध। यह बोध इतना तारी हो चुका था कि वे भले ही मेडिकल विभाग में कुष्ठ रोगों की दवा बांटने वाले लिपिक पद पर कार्य करते हुए सेवानिवृत्त हुए, पर कभी अपने को लिपिक न माने। पूरा गांव उन्हें डाक्टर ही जानता था। यह 'डाक्टर' शब्द 'शिवोऽहम्' जैसा ही उच्चीकृत था। अस्पताल की दवाएं लाते, इंजेक्षन लगाते, मरहम-पट्टी करते डाक्टर साहब क्षेत्र में विख्यात हो गये थे। पूरे जीवन में उनके इलाज से तीन-चार लोग ही इस संसार से विदा हुए। बाकी सभी सलामत हैं। डाक्टर साहब की अनपढ़ बीबी ने भी पति से चिकित्सा की विद्या ग्रहण कर ली थी। उनकी अनुपस्थिति में वहीं दवाएं देतीं। डाक्टर साहब ने अपने लिए पण्डित जी के पास सटा हुआ आसन चुन लिया।

डाक्टर साहब के एक भाई सुपारी नाथ हैं। काफी पढ़े-लिखे आदमी हैं, किन्तु आजकल घर में उनकी अहमियत लेड़ार कुक्कुर से ज्यादा की नहीं है। इसलिए सुबह की चाय और शाम का नाश्ता मास्टर जी के ही यहां लेते हैं। नाम के मुताबिक सुपारीनाथ की काठी भी गोल-मटोल। हां कोई बातों से उन्हें कभी नहीं कुतर सकता। वे सब को कुतरते रहते हैं। इसलिए गांव के छोकरे उन्हें अब सरौतानाथ कहने लगे हैं। बीडीओ साहब ने उन्हें अपने बगल में बिठाया।

बीडीओ साहब पता नहीं कैसे पूरी नौकरी कर गये। न बातों से और न व्यवहार में ही अफसरी के गुण दिखते। एक बेटा सीनियर इनकम टैक्स कमिश्नर है, दूसरा बिल्डर, तीसरा रिलायंस इंडस्ट्री में डिप्टी डायरेक्टर और चौथा कनाडा के एक यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर। तीन-तीन पौत्र-पौत्रियां विदेश में बड़ी कंपनियों में सेवारत हैं। लेकिन किसी ने कभी उन्हें कार-वार से आते न देखा। हमेशा पैदल ही रास्ता नापते घर से शहर और शहर से घर। खुद अस्सी साल के हो चुके हैं, पर एक सौ पांच वर्षीय पिता की सेवा नौकर के जिम्मे नहीं छोड़ते। मैला साफ करना हो या फिर पांव दबाना, वे खुद ही करते हैं। कथा में उनके होने का कोई विषेश मतलब लोगों के लिए नहीं था।

कथा शुरू हो गयी। पचासेक महिलाएं और इतने ही पुरुष जमा थे। एक अध्याय पूरा हुआ। बबऊ ने शंख पर फूंक मारी तो दो मिनट तक मारते ही रहे। लगा कि अर्जुन ने कुरुक्षेत्र में युद्ध का जयघोश किया हो। घंटे भर बीत चुके थे। महिलाएं ऊब रही थीं। किसी ने घूंघट उठाया और आसपास का मुआयना कर लिया। बगल में बैठी जेठानी से कुछ बतियाने लगी। बातों का सिलसिला पहले महिला मंडल से शुरू हुआ। एक-एक कर इधर का कथा पुराण बदल गया। उधर पंडित की भागवत कथा और इधर महिलाओं का चूल्हा-चौका पुराण। पुरुषों में कुछ लोग ऊंघने लगे तो किसी ने सुर्ती मसल कर नींद तोड़ने की कोशिश की। बच्चों की धमाचैकड़ी अपनी तरह शुरू हो गयी। लेकिन डाक्टर साहब, बीडिओ साहब समेत दर्जन भर लोग अभी भी हाथ जोड़ें आंख बंद किये कथा सुन रहे हैं। सुन रहे हैं कि बंद आंखों में निद्रालाभ ले रहे हैं, कौन जाने।

हर अध्याय पर शंख बजने के साथ कुछ देर के लिए श्रोता सावधान हो जाते। सबके हाथ खुद जुड़ जाते। महिलाएं अपने-अपने हिसाब से मन्नत मांग लेतीं। अमल की अम्मा ने जुड़ा हुआ हाथ माथे लगा लिया-'जै भागवत महराज, हमारे भइया लोगन का रन-बन में रच्छा करना। जिसका चाहो आप बनाओ, जिसका चाहो आप बिगाड़ों।'

देखा-देखी हर महिला ने अपने-अपने प्रियजनों के कुशल-क्षेम

की कामना की। मझली भौजी ने तो जमीन पर मत्था ही टेक दिया। मलिया फुआ की आंखों से तो धार ही बही जा रही है। कमली फुआ को सुनाई नहीं पड़ता, इसलिए वह टुकुर-टुकुर बस देखे जा रही है। सबने माथ झुकाया तो उसने भी जमींन पर मत्था टेक दिया। साल भर पहले ही तो उसके बेटे की ट्रेन से कटकर मौत हुई थी। तभी से वह और भी ज्यादा पत्थर हो गयी है।

बबऊ का पूरा परिवार बढ़-चढ़कर भागवत महाराज की कथा में शामिल हुआ है। बबऊ की पत्नी सास के साथ पहले ही कथा में जाकर विराज जातीं। बबऊ की अम्मा उर्फ मझली भौजी पुजारी जी की पत्नी हैं। उनके मायके के लोग बड़े धार्मिक हैं। सभी भाई बड़ी चुटिया और त्रिपुण्डधारी हैं। पति से उन्होंने बड़े नेम-धर्म-कर्म सीखे हैं। तीर्थ-व्रतों में गांव की महिलाओं की नेता वही होतीं। उन्हीं के गुरु जो पहले मात्र संन्यासी थे और बाद में एक पीठ बनाकर शंकराचार्य हो गये, के चलते इस गांव में आये थे। पहले तो पूरे गांव वालों ने इसका विरोध किया था, पर धीरे-धीरे सभी उनके भक्त बन गये। तीज का व्रत हो या ललही छठ की कथा, सुनाने का जिम्मा बबऊ की अम्मा का। भागवत कथा में पंडित के कथा सुनाने के बाद महिलाओं को अलग से व्याख्या सुनातीं। भागवत महराज के प्रताप का बखान करतीं।

यहां सब हैं। पट्टीदारी से लगायत गांव के लोग जमा हो रहे हैं और गौरव ने झांका तक नहीं। यह बात उन्हें कचोटती है।

शाम को उन्होंने फोन किया-'बेटवा, चच्चा गया जायेंगे। भागवत सप्ताह हो रहा है। एक दिन आकर शामिल तो हो जाओ।'

गौरव ने टका सा जवाब दे दिया-'अम्मा, तुम्हीं जाओ। तुमको तो कुछ याद नहीं रहता। मरनी-करनी, शादी-ब्याह में तो कभी बुलाया नहीं गया। आज उन्हीं अमल के घर में सप्ताह चल रहा है और पूरा परिवार मान-सम्मान ताक पर रखकर घर में घुसे जा रही हो।'

'अरे पुरखा-पुरनियों का मामला है। ऐसे नहीं बोलते।'

'अम्मा, असली गुनहगार तो हम्हीं हैं। कहीं मुझ अछूत के आने से पितर गया जाने से इनकार कर दिये तो?'

'गौरव, हम तो इतना जानते हैं बेटा कि अपना करम करते चलें। अच्छा, तुमसे एक सलाह करनी थीं। चच्चा गया जायेंगे तो कुछ तो मदद करनी ही पड़ेगी न?'

'काहे की मदद? कोई अपने पितरों को गया पहुंचाने जा रहा है तो हम काहे की मदद करें?'

'तुम्हारे पितर नहीं हैं?'

'ना नहीं। हमें तो इसमें कोई विश्वास नहीं। हम तो यही जानते हैं कि हिन्दू धर्म में जो मरता है, उसको दूसरी देह मिल जाती है। अब मास्टरजी को लग रहा है कि उनके जितने पितर मरे हैं, सब भूत-प्रेत हो गये हैं तो वे ही उन्हें गया पहुंचाकर मुक्त करायें। हमारी जान में तो सभी लोग कहीं न कहीं जन्म ले चुके होंगे। बल्कि कई बार जन्म लेकर मर चुके होंगे।'

मझली भौजी का मन कसैला हो आया। बच्चे चार अच्छर पढ़ क्या लेते हैं, धर्म-कर्म को ही लतियाने लगते हैं। क्या भागवत में सब झूठ लिखा है? पंडित क्या झूठ बोलते हैं?

शाम को बबऊ का फोन। लेकिन यह क्या, इस पर तो चाची बोल रही हैं-'ए भइया गौरव हो। कथा सुन रही हूं। सोमवार को पूरी हो जायेगी। मंगल को हम गया जायेंगे। विदा करने सबको लेकर आ जाना। चाची की बात भूल तो नहीं जाओगे। कहो तो चच्चा से ही कहलवाऊं।'

गौरव ने टालने की गरज से कहा, 'अरे नहीं रे चाची, आ जाऊंगा। तुम्हारा सम्मान तो चच्चा से बढ़कर है।'

अभी आध ही घंटे बीते होंगे कि फिर एक बार बबऊ के मोबाइल से काल हुई-'ए बबवा गौरव हो, गया जाना है। सप्ताह चल रहा है। मंगल को जरूर चले आना। और सुनो, अपने कालेज के शिक्षकों और प्रमुख जी वगैरह सबको बोल देना। और हां, हो सके तो अखबार में भी इसका समाचार दे देना।'

गौरव ने चच्चा को निराश नहीं किया, 'ठीक है, बोल देंगे और हम आ भी जायेंगे। बोर्ड की परीक्षा चल रही है, इसलिए व्यस्त हूं। लेकिन मंगलवार को आपको विदा करने जरूर जाऊंगा।'

मंगलवार की भोर अचानक एक विस्फोटक चीख-पुकार-ललकार हवा में तैरने लगी। सोते हुए लोग हड़बड़ाकर जाग गये। सब उसी ओर दौड़े। पता चला कि डीआईजी के सिरे दादा आ गये हैं। बेडौल काली काया प्रेतबाधा में फूल-पिचक रही है। नथुनों से एक गुर्राहट घड़घड़ा जाती। बच्चे डर के मारे घिघिया रहे हैं। ये मास्टरजी के बड़े भाई की पहली पत्नी के बड़े बेटे हैं। कहते हैं कि इनके दादा और बीडियो साहब के पिता में लाग-डाट थी। दोनों को एक माह के अंतराल में पोते हुए तो बीडीओ साहब के बेटे का नाम उसके दादा ने दरोगा रख दिया। उस जमाने में यह पद काफी ऊंचा माना जाता था। मास्टर जी के पिता कचहरीबाज थे। उन्होंने नहले पर दहला मारा। पोते का नाम डीआईजी रखा।

दोनों बच्चों के उम्दा पोषण में भी लाग-डाट थी। दरोगा की मालिस एक बार होती तो डीआईजी की तीन बार। लेकिन होनी को कौन टाल सकता है। दरोगा बाद में इनकम टैक्स कमिश्नर बन गये और डीआईजी भइया हाईस्कूल में पांच साल फेल होने के बाद कचहरी में मुहर्रिर का काम करने लगे।

डीआईजी भइया कलाकार आदमी हैं। कहते हैं कि वे अर्द्धनारीश्वर हैं। शादि-ब्याह में महिलाएं गीत ठीक से न गा पातीं तो डीआईजी भइया उनके बीच बैठकर विवाह, बंदा, सोहर, कजली, उठान, चैका गीत आदि जिस लय में सुनाते, वे दंग रह जातीं। महिलाओं का कपड़ा पहनकर नाचने भी लगते। वे कब किसी से नाराज हो जायेंगे और कब प्रसन्न, कुछ ठीक नहीं। नाराज होने पर ठेठ गंवार महिलाओं की तरह हाथ नचा-नचा, लुंगी उठा, गा-गाकर कजिया करते। उनके दुश्प्रचार चैनल ने बड़े-बड़े सद्चरित्रों को मुंह दिखाने लायक तक न छोड़ा था। वे एक साथ नेता, धार्मिक, कलाकार, अभिनेता, पंडित, कानून के ज्ञाता, महिला-पुरुष सब हैं।

भूतों-प्रेतों के साथ उनकी पुरानी संगति है। उनकी पत्नी जब तक जीवित रहीं, हबुआती रहीं। घर के लोग जब इसे नौटंकी करार देते तो उसे सही साबित करने के लिए डीआईजी भइया अपने सिरे भूत-प्रेत बुला लेते।

एक बार पाही पर रात के समय कुलगुरु आये। तब भौजी वही थी। उन्होंने अपने शिष्य की इस समस्या का समाधान करना चाहा। जंगल के बीच बसे इस गांव में रात वैसे ही भयावह होती है। वहां के पुराने जमींदार परिवार के लोग भी बुलाये गये। गांव के डीह का पुजारी भी आया। जाति का कोल था। डीआईजी भइया किसी बात को लेकर उससे चिढ़े थे। भौजी हबुआने लगीं तो ओझा ने भी झाड़-फूंक षुरू की। काफी जद्दोजहद के बाद उसने बताया कि सारे भूत घर के ही हैं। आगे की योजना बनी और सभा समाप्त होने लगी। कि अचानक क्या हो गया। डीआईजी भइया के सिरे बरम आ गये। बरम नाच रहे हैं। मोटी काया में बरम करीब पांच मिनट तक ऐसे डिस्को डांस किये कि हर कोई थरथरा गया। अचानक बरम ने ओझा की पीठ पर दो लात धर दिया। किसकी हिम्मत जो बरम को रोके। फिर तो तड़ाक्-तड़ाक् थप्पड़ और घूँसा भी। गर्मी का समय था। ओझा की पीठ और

गाल तमाचे से लाल हो गये। वह भी खांटी गबरू जवान। पीठ की चौड़ाई पूरे डेढ़ हाथ। सो उसे बचाने के लिए गांव के डीह बखतबली की सवारी आ गयी। उसने बरम की गांती में हाथ डालकर गद्द से पटक दिया। चढ़ बैठा सीने पर। लगा बरम का सीना, गाल पीटने। बरम नीचे, डीह बाबा ऊपर। अब बरम चिल्ला रहे हैं-'छोड़ दे रे डीह। मैं समझ गया। अब जा रहा हूं। तुमसे नहीं लड़ पाऊंगा।'

लेकिन डीह का गुस्सा जल्दी थमता है क्या? बरम चले गये। डीआईजी भइया सुस्त पड़े हैं। डीह अभी भी उनके गालों का भुर्ता बना रहा है।

जमींदार ने हाथ जोड़ लिए, 'हो गया डीह बाबा। मैं गांव का जमींदार आपसे बिनती करता हूं इसे छोड़ दीजिए।'

डीह फुंफकारने लगे। नथुने फड़क रहे हैं। कभी दायें तो कभी बाएं ताक रहे हैं। गुस्सा रोके नहीं रुक रहा। तीन-चार हाथ अपने कलेजे पर पीटे और उठ खड़े हुए। डीआईजी भइया की अंटकी सांस वापस आयी।

डीह ने किलकारी मारी-'बोल द उड़िया कुदान बाबा की।'

'जै'। सबने भयाक्रांत जैकारी की। डीह बाबा चले गये।

डीआईजी भइया को आज भी सवारी आयी है। किसी से झगड़ा हुआ हो, कोई बंटवारा कराना हो, हिस्सा लेनी हो, सवारी आ जाती है। आज दादा आये हैं।

मलिया फुआ दिल की छुलछुल। दौड़ पड़ी। देखते ही दादा रोने लगे। रोते-रोते चले गये। अब दादा के भाई की सवारी आ गयी, 'परधनवा को बुलाओ। अभी जिन्दा है। हमारा जनेऊ क्यों नहीं कराया। उसका सर्वनाश कर दूंगा।'

मलिया फुआ समझाने को आगे बढ़ी कि चट्ट, चट्ट दो तमाचे गाल पर पड़ गये। मलिया फुआ भागी।

सौतेली मां समझाने पहुंची तो दादा के भाई ने जोर से धक्का दिया। बिचारी चार फुट दूर जा गिरीं। घर में भय बरसने लगा। छोटे बच्चे चीख रहे हैं।

मझली भौजी को भी खबर लगी, पर वे नहीं आयीं। उन्हें पता था कि समझाने पर लात-घूंसा मिल सकता है। मास्टर जी ने कहा, 'लेड़ार फिर काम बिगाड़ने पर आमादा हो गया है।'

मास्टर जी ने लेड़ार शब्द तार्किक ढंग से पर्याप्त विचार के बाद डीआईजी के नाम के लिए चुना है। इलाहाबाद से लौटते समय एक बार उन्होंने गौरव से इसकी व्याख्या की थी-'लेड़ार कुत्ता का मतलब है कि जो न भूंके न काटे, बस घर में चोरी से घुस कर खाये और दुआर पर केवल लेड़ करे।'

डीआईजी भइया उर्फ लेड़ार पर सुबह के छह बजे तक सवारियां आती रहीं। दो-तीन घंटे की कड़ी मशक्कत के कारण देह थक चुकी थी। सो जमीन पर ही सुस्त हो कर गिर पड़े। कोई मनाने न रुका। आध घंटे के बाद खुद ही उठे और लोटा लेकर दिशा-फारिग चल दिये।

सारी असहमतियों के बाद भी गौरव घर आने के लिए बाध्य थे। इसलिए नहीं कि पितरों के प्रति श्रद्धा थी, बल्कि इसलिए कि मास्टर जी ने पिता के निधन और छोटे भाई के विवाह में अपनी जिम्मेदारी का भरपूर परिचय दिया था। यदि उन्होंने अतीत भुलाने की कोशिश की तो गौरव को भी वर्तमान का सम्मान करना चाहिए। मास्टर जी के साथ नये सरोकार के पीछे भी गौरव का ही व्यक्तित्व और उनके द्वारा दिया जाने वाला सम्मान था। इसलिए भी कि दोनों लोग एक ही पेशे से ताल्लुक रखते थे। और कहीं न कहीं मास्टर जी अमल के रिश्वतखोरी वाले पैसे के आतंकी घनत्व से गौरव के प्रति एक जबर्दस्त आत्मीयता और सम्मान का अनुभव करते हैं। न आते तो मास्टर जी का अंतर आहत होता।

हालांकि मस्टराइन कल तक गौरव की बीवी के हाथ का छुआ पानी न पीती थीं, लेकिन पिछली बार अपने से मांग कर चाय पी। गौरव की बीवी का इससे मलाल कम न हुआ। कहा, 'सरे आम जूता मारने के बाद सहलाना किस न्याय की श्रेणी में आता है?' फिर भी पति के समझाने पर आ ही गयीं।

श्राद्ध की क्रिया अमल के घर की बजाय आंगन में मास्टर जी के अपने हिस्से में आयोजित की गयी। श्राद्ध पूरा हुआ। मास्टर जी का मुंडन हुआ। साथ में डीआईजी भइया ने भी बाल छिला लिया। यह क्यों? अरे वे भी तो जायेंगे। पैसा नहीं था, नहीं तो मास्टर जी से पहले ही गया चले जाते।

सुपारी नाथ, छोटे कक्का, सुन्नर, गुलरी काकी, मलिया फुआ, कमली फुआ, बड़की फुआ, जलीला बहिन, मोटकी माई, परधान की तीनों बेटियां, चारों बहुएं, दो बेटे– सभी तो आ गये। यह क्या अमर, बड़क, गोल्डिया, लोदी आदि के परिवार के लोग भी आ रहे हैं। इनसे तो खाब-दान सब बंद हो चुका था। फिर भी आ रहे हैं?

मझली भौजी ने बेटे को समझाया, 'खाब-दान एक तरफ, लेकिन पितर तो सबके एक ही हैं। उनसे काहे की रार।'

बाजे वाले पेड़ के नीचे बैठे थे। सुपारी नाथ उन्हें देखते ही कुतरने लगे, 'कितने तरह का व्यापार करते हो भाई तुम लोग? कभी भूसा बेचते हो तो कभी सब्जी, कभी जनरेटर तो कभी बाजा बजाने लगते हो। .....ऐं.....अच्छा-अच्छा। कितने लोग हो?'

'तीन लोग बाबू। दाम भी तो कायदे से मिले?'

'अरे तो अइसै दाम नहीं मिलता। बाजा बजाने आये हो कि आराम फरमाने? दाम लेना है तो बजाना शुरू कर दो।'

बाजे वाले शुरू हो गये। बाजे की धुन से घर-घर टहोका हो गया, 'चलो रे चलो, अब मास्टर निकलने वाले हैं।'

देखते ही देखते सैकड़ों लोग जमा हो गये। बहुएं ऐसी बन-ठनकर निकलीं कि बारात विदा करने जा रही हों। बूढियों ने भी आज ब्लाउज पहन रखा था। बच्चों को पहनावे की फिक्र न थी। चारो ओर अफरा-तफरी, सुझाव-सलाह।

परधान की बड़ी बेटी ने गौरव का हाथ पकड़कर खींचा, 'अरे पगला, घरों में जाकर तेज से चिल्ला कि चलो फलाने बब्बा गया, चलो फलाने आजी गया।'

मझली भौजी चीखीं, 'अरे अमल खड़े हो? दुआरे जाकर जोर-जोर पितरों को बुलाओ। कहो कि गया चलें।'

अरे दया बब्बा को क्या हो गया? क्या बताना चाहते हैं? शोर -गुल में उनकी बात ही नही समझ में आ रही। लंबू पर निगाह पड़ी तो पकड़ लिए, 'सारे पितरों का नाम लेकर बुलाता क्यों नहीं?'

'हमें तो पितरों के नाम मालूम नहीं। आपै बताओ किसको-किसको बुलाऊ?'

दया बब्बा खिसिया गये, 'अरे का बतायें, पुजारी होते तो सात पीढ़ी तक का नाम भर्राटा लेकर बुलाते।' फिर कुछ सोच कर बोले, 'एक काम करो, 'पितर लोग गया चलिए, पितर लोग गया चलिए' बुलाओ। जो लोग भी होंगे, खुद चल देंगे।'

लंबू जोर-जोर चिल्ला रहे हैं, 'पितर लोग गया चलिए। पितर लोग गया चलिए।'

पितर कहीं दिख नहीं रहे। सबको भरोसा है कि पितरों की आत्माएं भटक रही हैं। वे कहीं न कहीं से उन्हें सुन रही हैं। किसी को ये आत्माएं आज डरावनी नहीं लग रहीं। एक अनजानी श्रद्धा अनजाने चेहरों, नामों के साथ जुड़ी जा रही है। महिलाओं की आंख से तो आंसू निकले जा रहे हैं। जलीला बहिन को क्या हो गया? हचक-हचक कर रो रही हैं। अपनी

भौजी, पिताजी, बब्बा, आजी को पुकार रही हैं। परेशान हैं कि कहीं ये लोग छूट न जायें। बचपन में इन्हीं लोगों ने तो मां के मरने के बाद पाला-पोसा। आज जिन्दा होते तो ये डीआईजी भइया ऐसी दुर्गति करते? सौतेली मां के चलते तो मायका ही नोहर (दुर्लभ) हो गया है।

आगे से हटो, हटो। मास्टर हर घर में अक्षत डालेंगे। अपने और अमल के कोने-अंतरे तक अक्षत छिड़क आये हैं। अब बबऊ के घर की ओर जा रहे हैं। नया घर है, क्या पता कोई पितर डेरा डाल दिया हो। बाकी बनने के बाद तो इसमें कोई मरा नहीं? अरे मरने के बाद ही थोड़े कोई डेरा जमाता है। आत्माएं तो कहीं जम सकती हैं। जहां उन्हें अच्छा लगे।

मास्टर आज कैसे तो लग रहे हैं। हर कोई उन्हें ही निहार रहा है। सच्ची उनके भीतर पितरों का वास हो गया है। चेहरा कैसा तो दमक रहा है। घुटा हुआ सिर, गेरुआ रंग का कुर्ता और गेरुई धोती। कंधे पर दंड और अंचला। पूरे संन्यासी लग रहे हैं। मस्टराइन भी पूरी भक्तिन लगती हैं। डीआईजी भइया तो पूरे भोदू महंथ लग रहे हैं। कमर के ऊपर का हिस्सा इतना भारी है कि वजन से जैसे पैर डायल हो गये हों। साइकिल के डायल पहिया की तरह पटेंग मारते हुए चल रहे हैं। एक साल पहले तक उनका एक कुत्ता था। उसका भी पैर डीआईजी भइया की ही तरह था। दोनों जन साथ चलते तो खुद पता चल जाता कि एक ही फैक्ट्री के उत्पाद हैं।

अमल का भाई लखनऊ में पढ़ता है। इसी कार्यक्रम में शामिल होने आया है। शक्ल-सूरत में किसी हीरो से कम नहीं, पर भगवान ने आंखों की रौनक छीन ली है। ताकता है पूरब तो मालूम होता है पश्चिम। पूरे पैंतीस साल का हो गया, पर कहीं क्लर्की की भी परीक्षा नहीं पास कर पाया। हां, गुटखे की ऐसी लत लग गयी है कि दो-दो पुडिया एक-एक बार में फांक जाता है। गुस्से में भुता जाये तो यमराज को भी मार डाले। आज भुता गया है जैकारी लगाने में। 'बोलो बल्लीवीर महराज कीऽ'

हुजूम चिल्लाया- 'जैऽऽऽऽ'।

'सत्ती मइया कीऽ'

'जैऽऽऽऽ'।

अकेलवा महरानी कीऽ'

'जैऽऽऽऽ'।

गड़इया माई कीऽ'

'जैऽऽऽऽ'।

बघउत वीर कीऽ'

'जैऽऽऽऽ'।

नारसिंह भैरो बाबा कीऽ'

'जैऽऽऽऽ'।

ठाकुर महराज कीऽ'

'जैऽऽऽऽ'।

शंकर भगवान कीऽ'

'जैऽऽऽऽ'।

आगे-आगे गया यात्री, पीछे बाजे वाले। गड़गड़ गड़ाम् गड़ाम्। तड़ई के तड़ धिन तड़ई के तड़ धिन, बीली के लगभग। तड़ई के तड़धिन, बीली के लगभग। किड़-किड़-किड़ गड़ाम् गड़ाम्।

बोलिए बजरंग बली कीऽ'

'जैऽऽऽऽ'।

बाजे के साथ भीड़ के जैकारे की संगति। रबीष्वर ने इस मौके को भी मौज का साधन बना लिया। आधे घंटे के भीतर चार गुटखा खा चुके है। मुंह में कुल्ली भरे हुए ही सिर आकाश की ओर उठाकर बोलते है-'ग्यै'।

गांव का एक गया विषेशज्ञ खुद आ गया है। लाल पताका कहां लगेगा, उसे ही पता। हर पट्टीदार के दुवार पर हुजूम जाकर बाजे की धुन के साथ जैकारी लगाता है। कुत्ते परेशान। इतना बड़ा हुजूम आखिर उनके मालिक के घर क्यों धमक रहा है? कोई गड़बड़ तो नहीं? वे लगातार भूंक रहे हैं। उनका भूंकना बाजे की धुन के साथ मिलकर गड्डमगड्ड हो जा रहा है। जैकारी सरीखा ही।

मास्टर जी आज किसी के भाई नहीं, चाचा नहीं, पिता-पति, दादा नहीं। आज वे केवल पितर हैं। घरों में बेरोक-टोक घुसते हैं और अक्षत फेंकते हुए निकल आते हैं। हुजूम फिर चल पड़ता है। जिस घर में अक्षत फेंका, घर के सारे सदस्य भी साथ हो लिए। शाम के छह बज गये। गौरव मास्टर जी के ठीक पीछे-पीछे चल रहे हैं। पलटकर देखे तो देखते ही रह गये। पांच सौ से कम लोग न थे। जबकि दो तिहाई लोग परदेश में रहते हैं। सब पट्टीदार एक जगह एकत्र हो जायें तो खिलाने भर को भी न अंटेगा।

अब गांव गोठा जायेगा। डीआईजी भइया के हाथ में धार (हल्दी आदि से बना टोटके के लिए घोल, जिसे गांव की बार्डर लाइन पर धारा बनाते हुए छोड़ना अनिवार्य है।) लेकर पीली लाइन बनाने लगे हैं। सरहद का मोड़ आने पर लाल पताका गाड़ दी जा रही है। देवथान पहुंचने पर हुजूम जैकारी करता रहता है और गया यात्री उनकी पूजा करते हैं।

बाप रे गांव गोठने में पूरे तीन घंटे लग गये। सूरज डूबने को आया। अब क्या होगा?

बबऊ ने कान के पास मुंह सटाकर पूछा, 'गौरव तुम्हारे पास कित्ते रुपये हैं?'

'ऐं, क्या होगा?'

'अरे विदाई के समय देना तो पड़ेगा न?'

'अच्छा। हमें पता न था।'

पाकेट छानने के बाद कुल 180 रुपये मिले। बीस-बीस की दो बाकी सब दस की नोटें मिलीं।

बबऊ संतुष्ट हुए, चलो सारा का सारा फुटकल है।

मझली भौजी भी पैसे के लिए पूछ रही हैं। बबऊ के कहे अनुसार गौरव ने सारे पैसे मां, पत्नी, भाभी, भइया को बांट दिये। खुद के लिए 70 रुपये निकाल लिये।

अब खानदान के लोग गया यात्रियों के पैर छू रहे हैं। दस, बीस, पचास, सौ की नोटें हाथों में पकड़ाते हुए पितर के पैरों पर सिर टेक दे रहे हैं सब।

'रुको-रुको, पहले नयी बहुओं को छूने दो।' लोदी काका समझा रहे हैं।

गौरव परेशान हैं। अम्मा ने पहले ही कहा था कि हजार-दो हजार तो लग ही जायेगा। चले आये खाली टेट। दूर के पट्टीदार जब सौ-सौ की नोटें थमा रहे हैं तो घर वालों को उससे भी ज्यादा करना चाहिए न!

पत्नी के पास दौड़े, 'तुम्हारे पास कुछ रुपये हैं?'

'हां, हैं न। कितना चाहिए।

'तुम कितना रक्खी हो?'

'यही कोई बारह सौ होंगे।'

'अच्छा तो एक काम करो कि मास्टर जी को पांच सौ और चाची को एक सौ देकर पांव छू लो।'

पत्नी ने मास्टर जी के हाथ में पांच सौ के नोट रखे तो उन्होंने सिर पर हाथ रख दिया, 'सदा सुहागन रहो।'

चाची का आज पहली बार पांव छूने झुकीं। इसलिए उसने सास से साफ कह दिया था, 'पांव नहीं छूऊंगी, क्योंकि उनका पांव भी अपवित्र हो जायेगा।' लेकिन नहीं, आज हठ का दिन नहीं। गौरव की बहू समझती है। सौ की नोट हाथ में रख पैर

छू लिए। चाची निहाल। आशीर्वाद को मुंह क्या खुला, एक धारा ही बह गयी, 'दूधो नहाओ, पूतो फलो' 'अमर रहो बेटा, भगवान तुम्हारे सुहाग राखें'.....।'

अब बारी उम्रदार स्त्री-पुरुषों की थी। 'अरे यह क्या, दया बब्बा मास्टर जी के पैर छू रहे हैं?' शायद गौरव बोल रहे थे। सुपारीनाथ ने डपट दिया, 'बड़ी-बड़ी डिग्री ले लेने से कोई जानकार थोड़े हो जाता है। आज मास्टर मास्टर नहीं हैं, वे आज पितर हैं। हम सबके पितर। सारे खानदान के पितर।'

बड़की भौजी से पालागी तक नहीं, पर वे समझा रही हैं-'दुर पगला, समझा तो कर। आज माहटर में पितरन का वास है।'

कुछ बोलते कि तब तक देखते क्या हैं कि हाथ-पैर कांपते नब्बे वर्षी झम्मन बब्बा को उनके पोते गोद में उठाये चल आ रहे हैं। मास्टर जी से दशकों की इस परिवार से अदावत। पर पितर जा रहे हैं तो अदावत कैसी? अज्जू पंडित के भइया का विवाह ऐसी लड़की से हुआ जो किसी चमारिन रखैल की बेटी थी। मास्टर जी उन्हें 'मैला' कहकर पुकारते थे, पर नहीं आज मुक्त कंठ आशीर्वाद दे रहे हैं। परधान के परिवार को आज गौरव और उनके परिवार की उपस्थिति से कोई दिक्कत नहीं। सब कैसे तो घुल-मिल खिल-खिल हैं। गौरव हक्के-बक्के दस साल की नारकीय यातना में बहे जा रहे हैं। गैर जातीय विवाह के बाद कैसे-कैसे अपमान, मानसिक यंत्रणाएं, मौत की हद तक पहुंचाने वाले बयान क्या एकाएक धुल गये? क्या मैं पवित्र हो गया? क्या अब खानदान के लोग परस्पर खाब-दान षुरू कर देंगे?

नहीं। संभव नहीं। उन्हें मालूम है कल से हिन्दू तालिबान फिर कत्ल के मोर्चे पर डट जायेंगे। उन्होंने हाथ जोड़ लिए, 'धन्य हो पितरों, धन्य हैं तुम्हारे वंशज। जब ये आज अपनी आंत में इतनी दाढ़ी रखते हैं तो आप उस जमाने में कितने रखते होंगे। आपको धन्यवाद कि कुछ घंटे, कुछ दिन ही सही, खानदान की एकता तो दिखाई। बस केवल इतने के लिए तुम्हें प्रणाम।

❃

मारा शहेरनां, गुजरातीभाषाना कविश्री रमेश आचार्य माटे अछांदस कविता हाथवगी छे. लब्ध प्रतिष्ठित कवि सुरेश दलाले एमनी कविता वांची नोंध्युं छे के...

❃

'उद्देश' मां वांचतानी साथे वसी जाय एवी कविता मळी. एटले लखवानुं मन थयुं. त्यारे खबर पडी के आ कवि सुरेन्द्रनगरमां रहे छे. खरेखर तो कवि एक गाम के नगरमां नहीं, पण एमना शब्दना घरमां रहेतो होय छे, अहीं नदीनुं महत्व छे, पण नदी करतां पोताना गामनी नदी छे एनुं ममत्व विशेष छे. पोताना गामनी नदी जेटली पोतीकी लागे एटली कोई बीजी नदी न लागे.. **- सुरेश दलाल**

कहानी

बर्फ

- भावना लालवानी

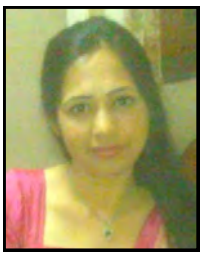

अपने 15वीं मंजिल के फ्लैट की खिड़की से बाहर सड़क और उस से लगी हुई इमारतों का नज़ारा देखते हुए उसका मन और मस्तिष्क जाने कहाँ उड़ता फिर रहा था .. कौन पहाड़ों, नदियों और सागरों के पार भागता फिर रहा था इसका अंदाज़ा लगाना मुश्किल था।

पिछले तीन दिन से लगातार बर्फ पड़ रही थी, टोरंटो का मौसम बेहद ठंडा हो गया था .. वो अंग्रेजी में कहते हैं ना स्पाइन चिल्लिंग कोल्ड .. वैसा ही। चारों तरफ जहां तक नज़र जाती थी, "सब कुछ" बर्फ से ढका था, बिल्डिंग्स, सडकें यहाँ तक कि सड़क किनारे के पेड़ और झाड़ियाँ भी। सारी दुनिया सफ़ेद रंग में रंग गई थी .. ऋचा को लगा जैसे एक सफ़ेद चादर, बर्फ की सफ़ेद चादर उसे भी ढके हुए हैं .. अन्दर से लेकर बाहर तक , सर से पैर तक बर्फ की ठंडी चादर उसे समेटे हैं। अभी और कुछ आगे सोचती या मन किसी और सागर या पहाड़ के किनारे को पार करता इसके पहले एक आवाज़ ने उसका ध्यान तोडा।

"ऋचा .. कहाँ हो ". मानिक घर आ चुका हैं। ऋचा ने उसे किचन की तरफ जाते देखा .. कुछ समझ ना आया .. कुछ खाना या पीना है तो मुझसे ही कह देता।

लेकिन मानिक शायद कुछ और ही सोच रहा होगा क्योंकि अब तक कॉफ़ी मेकर मानिक के लिए कॉफ़ी बना चुका था। मानिक ने ड्रिंकिंग चॉकलेट का कैन खोल एक बड़ा स्पून अपनी कॉफ़ी में मिलाया ... ऋचा ध्यान से देख रही थी .. आजतक कभी उसने नोटिस नहीं किया था कि मानिक को कैसी कॉफ़ी पसंद है ..

"तुमको चोको कॉफ़ी पसंद है?"

अब था तो ये एक सवाल लेकिन ऋचा ने इसे सवाल की तरह नहीं कहा। मानिक ने इस अंतर को पकड़ लिया था इसलिए उसने एक लापरवाह नज़र ऋचा पर डालते हुए जवाब दिया ..

"हाँ, जब थक जाता हूँ तब हॉट चोको कॉफ़ी बॉडी और ब्रेन दोनों को रिलैक्स कर देती है" और उस वक़्त बात वहीँ पर आकर रुक गई आगे बढाने का कोई सूत्र नहीं था, होता तो भी व्यर्थ का औपचारिक वार्तालाप कब तक खींचा जा सकता है। दो साल हो गए हैं यहाँ आये और सेटल हुए .. ऋचा एक फर्म में लीगल असिस्टेंट बन गई और मानिक तो खैर पहले ही एक लीडिंग फाइनेंसियल और बैंकिंग फर्म का सीनियर फाइनेंसियल एनालिस्ट है और इस खूबसूरत अपार्टमेंट को, जिसमे ये दोनों रहते हैं इसे मेन्टेन रखने में मानिक की सैलरी का ही बड़ा योगदान है।

(आगे पढ़िए पेज 28)

बातचीत

'गंभीर साहित्य धीरे-धीरे जवान होता है' - प्रख्यात लेखक **प्रताप सहगल** से युवा कवि लालित्य ललित की बातचीत

लालित्य ललित: आप पत्रिकाओं में छपना पसंद करते हैं या समाचार पत्र में?

प्रताप सहगल: मुझे छपना अच्छा लगता है। चाहे वह किताब के रूप में हो या फ़िर पत्रिका या समाचार-पत्र में। समाचार पत्र की अपेक्षा पत्रिका अधिक दीर्घ-जीवी होती है, जबकि समाचार पत्र अधिकतर पत्रिकाओं की अपेक्षा अधिक हाथों में पहुँचता है। मैं चाहता हूँ रचना पहले किसी अच्छी पत्रिका या अच्छे समाचार पत्र में छपे और बाद में वह किताब की शक़्ल में आए।

लालित्य ललित: आप कवि, नाटककार, कथाकार और साथ ही आलोचक भी हैं, ऐसा लोग कहते हैं। जहाँ तक मेरी जानकारी है आपने कविता के साथ-साथ नाटक, कहानी, उपन्यास और आलोचना कर्म भी किया है। और कई यात्रा-संस्मरण भी बहुत अच्छे लिखे हैं। तो सहगल साहब यह बताएँ कि आप स्वयं को किस विधा में अधिक निपुण मानते हैं?

प्रताप सहगल: मैं स्वयं को सिर्फ़ एक लेखक के रूप में देखता हूँ। विषय के अनुरूप जिस विधा की ज़रूरत महसूस होती है, उस विधा को चुन लेता हूँ। यह नहीं कि मैं फ़लाँ विधा में निपुण हूँ और फ़लाँ में नहीं। यह बात कुछ अटपटी लगती है।

लालित्य ललित: सहगल साहब, आपका सबसे पहला नाटक कौन सा था? वह कब लिखा और किस उम्र में?

प्रताप सहगल: सबसे पहले मैंने जो लिखा वह कहानी थी। उस कहानी का नाम था 'बेकार'। कहानी का विषय बेकारी थी और यह एक बेकार युवा की मानसिकता पर केन्द्रित कहानी थी। उस समय मैं नवीं कक्षा में पढ़ता था और बेकारी साफ़-साफ़ नज़र आने लगी थी। यह कहानी 1961 में 'वीर अर्जुन' में छपी थी। पहला नाटक 1972 में लिखा, जो खो चुका है। उसके बाद पीटर शेफ़र के नाटक 'ब्लैक कामेडी' का 'अँधेरे में' नाम से रूपांतर किया। उन्हीं दिनों एक मौलिक नाटक भी साथ-साथ लिख रहा था स्त्री-पुरुष संबंधों को लेकर। इसके कई ड्राफ़्ट बनते रहे और आपको यह जानकर हैरानी होगी कि जो नाटक मैंने 1973 में लिखना शुरू किया वह छपा 1998 में। 25 साल तक वह नाटक नहीं छपवाया। इस बीच मेरे चार-पाँच नाटक और आ गए। 'रंग बसंती' आया, 'मौत क्यों रात भर नहीं आती', और 'अन्वेषक' आया। कुछ लघु नाटक और एक बल्गेरियन नाटक का हिन्दी अनुवाद भी 'किस्सा तीन गुलाबों का' नाम से आया। तो जनाब आप मेरे नाट्य-लेखन की शुरूआत 1972-73 से मान सकते हैं।

लालित्य ललित: नहीं, जैसा कि आपने बताया कि आपने शुरुआत कहानी से की लेकिन आज आपकी पहचान एक नाटककार के तौर पर ज़्यादा है। ऐसा क्यों?

प्रताप सहगल: जब तक लेखक ज़िन्दा रहता है उसकी पहचान बदलती रहती है और कई बार उसके चले जाने के बाद भी। नाटक सर्वाधिक जनतांत्रिक विधा है जो मंच के माध्यम से लोगों तक सीधे पहुँचता है। नाटक जब मंच पर आता है तो आप जल्दी पहचाने जाते हैं। नाटक लिखते रहें, छपते भी रहें और मंचित न हों तो पहचान जल्दी नहीं बनेगी। 'रंग-बसंती' 1981 में मंचित हुआ और उसे साहित्य कला परिषद के तीन अवार्ड मिले। उनमें से एक अवार्ड लेखन के लिए भी था। उसके बाद इसकी चर्चा भी होती रही। उसके बाद 'अन्वेषक' आया तो उसकी चर्चा भी बहुत हुई। 'अँधेरे में' भी कई-कई शहरों में अलग-अलग मंडलियों ने खेला। इस बीच कई लघु नाटक आते रहे। छपते रहे और मंचित भी होते रहे।

यानी जो रचना मंच के माध्यम से सामने आती है वह आपको पहचान देती है। कविता की बात लीजिए। एक से एक बेहतरीन कविताएँ आती हैं। कविता-संग्रह आते हैं लेकिन मंचीय कवियों के बरक़्स लोक में वे कम जाने जाते हैं। हालाँकि गुणवत्ता के लिहाज़ से लोक-चर्चा के दायरे से बाहर कवियों की कविताएँ बहुत बेहतर होती हैं। लेकिन उनकी चर्चा या तो नहीं होती या फ़िर बहुत छोटे दायरे में ही सिमट कर रह जाती है। इसलिए यह तय करना मुश्किल है और बेमानी भी कि किसी की पहचान एक खास विधा और उस विधा में भी किसी एक कृति के साथ क्यों जुड़ जाती है।

लालित्य ललित: जब आप दर्शक दीर्घा में होते हैं और आपके सामने आपका नाटक खेला जा रहा है और आडिएंस को यह पता चलता है कि नाटक लिखने वाला लेखक हमारे बीच में है तो उस समय आपके मन में किस तरह की फ़ीलिंग्स आती हैं?

प्रताप सहगल: नहीं, आडिएंस को कहाँ पता चलता है। कई बार 800 से 1000 तक दर्शक होते हैं, सब तो मुझे नहीं जानते। हाँ, जो मेरे साहित्यिक मित्र हैं या निकटजन, वे ज़रूर जानते हैं। कोशिश करता हूँ कि उनके बीच जाकर बैठूँ और उन पर जो प्रभाव हो रहा है, वह जानूँ। मंचन के बाद नाटक पर त्वरित कमेंट करना मुश्किल होता है। त्वरित रूप में या तो दर्शकों की तालियाँ मिलती हैं या फ़िर बधाईयाँ। हाँ...तालियों की आवाज़ से इतना अनुमान ज़रूर होता है कि उनका नाटक के साथ तादात्मय हुआ या नहीं। लेकिन त्वरित विश्लेषण, जिसे एनालिटिकल एप्रोच कहते हैं, करना संभव नहीं होता। उसके लिए व्यक्ति को थोड़ा ठहर कर सोचने की ज़रूरत होती है। नाटक क्योंकि प्रस्तुत हो रहा है, उसमें केवल आलेख ही नहीं, अभिनय भी है। संगीत, दृश्य-बंध, वेशभूषा, प्रकाश-व्यवस्था भी है। यह सब मिलकर एक टोटल इफ़ेक्ट डालते हैं। मैंने कई बार बहुत खराब नाटक की अच्छी और बहुत अच्छे नाटक की खराब प्रस्तुतियाँ देखी हैं।

लालित्य ललित: क्या आप अभी भी यह मानते हैं कि आपको एक श्रेष्ठ नाटक लिखना है, जो अभी बाकी है?

प्रताप सहगल: हाँ बिल्कुल। अभी तो बहुत कुछ लिखना शेष है। बहुत सारी चीज़े ज़हन में हैं। धीरे-धीरे ही उन्हें शेप मिलती है।

लालित्य ललित: अच्छा यह बताइए, लंबी कविताओं का दौर रहा, जिसमें या तो नरेन्द्र मोहन या आप छाए रहे, लेकिन आज लंबी कविता लोग कम पढ़ना चाह रहे हैं। किसी के पास इतना समय नहीं है। आज छोटी कविता पसंद आने लगी है। इसकी कोई विशेष परिस्थिति या कोई कारण है क्या?

प्रताप सहगल: लंबी कविता का पाठक पहले भी कम था, आज भी कम है। गंभीर रचना का पाठक हमेशा कम ही रहा है लेकिन वह पाठक बड़ा महत्त्वपूर्ण और अर्थपूर्ण होता है। वह पाठक रचना में प्रवेश करता है, उसे समय देता है। ऐसे पाठक बहुत कम हैं जो रचना के साथ-साथ लेखक के साथ भी संवाद करते हैं, इसलिए पाठकों की राय अक्सर अलक्षित रह जाती है। यह बात सही है कि लंबी कविता का एक ऐसा दौर भी चला जब हर कवि को यह लगने लगा था कि लंबी कविता लिखे बिना उसकी कवि के रूप में कोई पहचान नहीं बनेगी। यही दबाव कवियों को लंबी कविता लिखने की ओर प्रेरित कर रहा था। जिस समय की बात आप कर रहे हैं, छोटी कविताएँ भी लिखी जा रही थीं उस समय और आज भी लंबी कविताएँ लिखी जा रही हैं

ललित लालित्य: आपके अभी तक दो उपन्यास भी आए हैं 'अनहद नाद' और 'प्रियकांत' और दोनों उपन्यासों की चर्चा भी रही है। दोनों के विषय भी अलग-अलग हैं। 'अनहद नाद' तो एक तरह से आत्म-कथ्यात्मक उपन्यास है लेकिन प्रियकांत की प्रेरणा आपको कहाँ से मिली?

प्रताप सहगल: प्रियकांत का थीम राइज़ आफ़ धर्माचार्यास और धर्म गुरू हैं। इसकी भूमिका में लिखा है कि 1970 के बाद हमारे समाज में दो बातें स्पष्ट रूप से रेखांकित की जा सकती हैं। पहली है राजनीति का अपराधीकरण और दूसरी है धर्म का व्यावसायीकरण। प्रियकांत की प्रेरणा के मूल में यही बात है और दूसरे कारक तो होते ही हैं जो किसी भी रचना को संभव बनाते हैं।

ललित लालित्य: डायरी लिखने की बात जो आपके मन में आई तो क्या आप बालकवि बैरागी और राहुल सांकृत्यायन या किसी और बड़े लेखक से प्रभावित हुए हों?

प्रताप सहगल: नहीं बालकवि बैरागी से क्या प्रभावित होना। वो इतने बड़े लेखक नहीं हैं। राहुल सांकृत्यायन की बात कर सकते हैं। वे एक बड़े लेखक हैं और बड़े लेखकों का असर तो आपकी मानसिकता पर होता ही है। लेकिन ऐसा नहीं कि फ़लाँ डायरी लिखते थे तो मुझे भी डायरी लिखनी चाहिए। बहुत पहले कभी लिखता था, फ़िर छूट गई। अब लगा कि कुछ बातें हैं जो किसी विधा में अटती नहीं जैसे मित्रों, परिवारों के साथ संबंध, गोष्ठियों, सेमिनारों की हलचलें और उनमें उठे प्रश्न, राजनीति, धर्म, साहित्य, अपनी सोच-समझ सब कुछ तो समा सकता है डायरी में।

ललित लालित्य: सब कुछ का मतलब?

प्रताप सहगल: सब कुछ का मतलब सब कुछ। व्यक्ति, स्थान, समय और विषय आदि के बारे में जो आप सोच रहे हैं |

ललित लालित्य: डायरी में आप जो लिख रहे है, सब सच लिख रहे हैं, सच के सिवा कुछ नहीं।

प्रताप सहगल: जो लिखूँगा, वह सच ही लिखूँगा। यह संभव है कि मैं बहुत सी बातें दर्ज न करना चाहूँ और वे दर्ज न करूँ लेकिन जो दर्ज करूँगा, वह तथ्यात्मक रूप से सही होगा, परसेप्शन अलग-अलग हो सकते हैं।

ललित लालित्य: आपकी डायरी आईना है पाठक के लिए कि प्रताप सहगल ने लिखा तो क्या लिखा अपने या दूसरे के संबंध में या रचना-प्रक्रिया या एक लेखक की कुछ निजी बातें हो सकती है। पाठक यह जानना चाहता है कि प्रताप सहगल का फ़लां लेखक या लेखिका से क्या संबंध है या उन संबंधों को वे किस तरह से लेते हैं?

प्रताप सहगल: यह इंटरव्यू ले रहे हो न तो बहुत सी बातें निकलेंगी

लालित्य ललित: आपने कई सारी विदेशी भाषाओं में जो अच्छे लेखक हैं, उनकी बहुत सारी कविताओं का अनुवाद किया है। किस देश के लेखक की कविता ने आपको ज़्यादा प्रभावित किया?

प्रताप सहगल: संघर्ष मुझे प्रभावित करता है। मसलन अफ़्रीकी लेखन में जो संघर्ष दिखता है, उस तरह की कविताएँ मुझे अच्छी लगती हैं और रूसी क्रांति के दौर की या फ़िर अपने ही देश में दूसरी भाषाओं की कविताएँ जो अपनी पहचान बनाने के लिए संघर्षरत हैं। इसीलिए मुझे अफ़्रीकी कविताएँ अच्छी लगीं और मैंने कई कविताओं का अनुवाद किया।

लालित्य ललित: अभी कुछ देर पहले आपने कहा था कि आपकी रचना-यात्रा की शुरुआत 'बेकार' नाम की कहानी से होती है। क्या आपके मन में फ़िर कभी कहानी लिखने का विचार नहीं आया?

प्रताप सहगल: जाने क्यों कहानी बीच में छूट गई। वैसे 1974 में 'अब तक' नाम से एक कहानी-संग्रह संपादित किया था, प्रकाशित भी हुआ। उसमें मेरी भी दो कहानियाँ हैं। इसके बाद एक लंबा अंतराल है। लेकिन पिछले सात-आठ साल में मैं एक बार फ़िर कहानी की ओर मुड़ा और कुछ कहानियाँ लिखीं और पिछले साल ही वाणी प्रकाशन से मेरा कहानी संग्रह 'मछली-मछली कितना पानी' प्रकाशित हुआ है। उसमें मेरी कुल ग्यारह नई कहानियाँ हैं।

लालित्य ललित: मैंने पढ़ी हैं। बेहतरीन कहानियाँ हैं। यह तमाम कहानियाँ इंडिया टुडे, समावर्तन, जनसत्ता और समकालीन भारतीय साहित्य आदि में भी छप चुकी हैं शायद?

प्रताप सहगल: हाँ, सभी कहीं न कहीं प्रकाशित हुई हैं, पाठकों के स्नेह का पात्र बनी हैं।

लालित्य ललित: लेकिन सहगल साहब, यह बताइए कि कहानी लिखने की आपकी गति इतनी धीमी क्यों है?

प्रताप सहगल: जल्दबाज़ी में लिख नहीं पाता। जब तक प्रेशर बिल्ड नहीं होता...कई बार प्रेशर बिल्ड होता है और कहीं और रिलीज़ हो जाता है, तब भी कहानी छूट जाती है।

लालित्य ललित: अच्छा आपने कई बार आकाशवाणी के लिए कई सारे धारावाहिक लिखे हैं। वहाँ आपको आनंद आता है या लगता कि सब बेकार का काम है?

प्रताप सहगल: बेकार तो नहीं कहना चाहिए...हाँ संतोष कम होता है लेकिन कई बार रेडियो के माध्यम से बहुत सार्थक काम होते हैं।

लालित्य ललित: जैसे?

प्रताप सहगल: जैसे मेरा नाटक 'अन्वेषक' ले लीजिए। इसका पहला ड्राफ़्ट रेडियो के लिए लिखा गया था। कुछ दिनों बाद दिमाग़ में खलबली मची कि इस पर और काम होना चाहिए। और काम शुरू किया तो वह एक पूर्णकालिन नाटक हो गया और आप तो जानते ही हैं कि इस नाटक की बहुत चर्चा रही। इसी तरह से रवीन्द्रनाथ ठाकुर के उपन्यास 'गोरा' या उनकी कहानियों के रेडियो रूपांतर किए और फ़िर उन्हें मंचीय रूप भी दिया। बंकिम के 'आनंदमठ' और चतुरसेन शास्त्री की 'गोली' और श्रीकृष्ण मिश्र के संस्कृत नाटक 'प्रबोधचंद्रोदय' के रेडियो रूपांतर किए। और भी बहुत सा सार्थक काम रेडियो के माध्यम से हुआ है, इसलिए सब बेकार नहीं कहना चाहिए।

लालित्य ललित: पाठकों की प्रतिक्रियाएँ आप कैसे लेते हैं?

प्रताप सहगल: पाठक तो ख़ुद ही प्रतिक्रिया देता है अगर वह देना चाहे तो! उनके पत्र या फ़ोन आते हैं। गोष्ठियों में प्रतिक्रिया तुरंत मिल जाती है। प्रकाशित रचना पर राय तो पत्र-पत्रिका के माध्यम से ही मिलती है।

लालित्य ललित: क्या आपको लगता है कि आप अपने जीवन में जितने सरल हैं, उतने ही सरल लेखन में भी हैं?

प्रताप सहगल: नहीं। लेखन में सरलता का मतलब है इकहरापन। लेखन में सहजता एक गुण हो सकता है। एक स्थिति, घटना, व्यक्ति, चरित्र के कई आयाम हो सकते हैं। मुझे नहीं लगता कि सरल लेखन में इस काम्पलैक्सिटी को पकड़ा जा सकता है। कोई व्यक्ति दर असल इकहरा होता नहीं है। अब अगर तुम्हें लगता है कि मैं सरल हूँ तो पता नहीं ऐसा क्यों लगता है लेकिन मेरे अंदर एक वक्रता है,एक काम्लैक्सिटी है और अगर मैं उसे पकड़ नहीं पाता ईमानदारी के साथ तो फ़िर मुझे अपने लेखक होने में ही शक़ होने लगेगा।

लालित्य ललित: लेखन प्रक्रिया से गुज़रते हुए आपके मन में क्या फ़ीलिंग आती है यानी रचना होने के बाद कि उसे किसी प्रकाशक को दिया जाए या अख़बार को कि वह व्यापक पाठक वर्ग तक पहुँचेगी। किताब आने में थोड़ा समय लगता है।

प्रताप सहगल: पहली इच्छा रचना को सुनाने की होती है कि किसी मित्र या पत्नी से शेयर करें कि तुरंत कोई प्रतिक्रिया मिल सके। मेरी रचना अक़्सर पहले शशि ही सुनती हैं, फ़िर कोई मित्र। सुधार की ज़रूरत होती है तो वह किया जाता है। रचना का अंतिम रूप तो कभी होता नहीं। रचना निरंतर टुकड़ों, रूपों और हिस्सों में अभिव्यक्त होती रहती है। किसी भी रचना को मैं अंतिम शब्द नहीं मानता। फ़िर चाहता हूँ वह किसी उपयुक्त पत्र/पत्रिका में प्रकाशित हो। किताब के रूप में तो उसे अन्तत: आना ही है। किताब की विडम्बना है कि वह पत्र/पत्रिका की अपेक्षा बहुत हाथों में एक साथ नहीं पहुँचती लेकिन दीर्घजीवी किताब ही होती है। इसलिए एक के बाद एक दोनों रूपों में छपना मुझे अच्छा लगता है।

लालित्य ललित: यानी आप अपनी पत्नी को अपना पहला पाठक मानते हैँ?

प्रताप सहगल: अधिकतर पहली पाठक वही होती हैं।

लालित्य ललित: यदि प्रताप सहगल कवि, कहानीकार, नाटककार, आलोचक न होते तो क्या होते?

प्रताप सहगल: क्या होता? इसके अतिरिक्त कुछ हो सकता होता तो वही होता। मैं जो हूँ, वही हो सकता था।

लालित्य ललित: कभी नहीं लगा कि एक ऐसा सपना जो अभी भी पूरा होना है कि मैं यह नहीं हो पाया, वह नहीं हो पाया। क्या आप अपने जीवन से संतुष्ट हैं?

प्रताप सहगल: न जीवन से संतुष्ट हूँ न लेखन से लेकिन इसके कारण दीगर हैं।

लालित्य ललित: क्या कारण है?

प्रताप सहगल: कुछ और की तलाश रहती है जैसे.....

लालित्य ललित: किस तरह की?

प्रताप सहगल: उसे कहना मुझे आ जाए तो फ़िर बात ख़त्म हो जाए। इसीलिए तलाश जारी रहती है। जैसे इस दुनिया की शुरूआत के कारणों की तलाश, लोगों और आपसी संबंधों को समझने की कोशिशें, बार-बार कोशिशें। जीवन में जो अधूरापन है, उसी अधूरेपन को ही तो हम लेखन से भरने की कोशिश करते हैं। तमाम कलाएँ यही करती हैं।

लालित्य ललित: अभी आपने संबंधों की बात की, तलाश और एक रिक्तता को भरने की कोशिश की बात की। क्या कभी आपने किसी प्रकाशक या लेखक या किसी अपने से धोखा खाया है?

प्रताप सहगल: खाया है।

लालित्य ललित: प्रकाशक से , लेखक से या किसी अभिन्न मित्र से?

प्रताप सहगल: लेखक-प्रकाशक-मित्र से। मित्रता तो ऐसा रिश्ता है जो चलता है। कुछ मित्रताएँ थोड़े वक़्त के लिए चलती हैं, कुछ जीवन भर। स्कूली या कालिज के दिनों के मित्र अक़्सर मित्र बने रहते हैं...अपनी अनुपस्थिति में भी।

लालित्य ललित: मुझे मालूम है कि आप तमाम अख़बार और पत्रिकाएँ बहुत पढ़ते हैं। फ़िर भी यह लगता है कि आज की जो राजनीति है, साहित्यिक राजनीति या गुटबंदी है, उससे आप दूर हैं। क्या आपने अपने आपको दूर कर लिया है या सारी चीज़ें महसूस करके उस पल का आनंद लेते हैं और अपने में मस्त रहते हैं?

प्रताप सहगल: मुझे अपने में मस्त रहना बहुत अच्छा लगता है और जिस साहित्यिक राजनिति की ओर आप इशारा कर रहे हैं, उससे मैं दूर ही रहता हूँ। दोस्तियाँ बहुतों से हैं। उन्हें दोस्तियाँ मान कर चलता हूँ। दोस्ती जितनी लंबी हो उतनी अच्छी लगती है। मुझे लगता है कि आप पढ़िए, काम करते रहिए। वैसे यह जो राजनीति होती है वह अपने लिखे हुए को जमाने के लिए ही ज़्यादा होती है। वो सब मैं नहीं करता और उसका जो ख़ामियाज़ा भुगतना पड़ता है, भुगतता हूँ।

लालित्य ललित: मुझे लगता है कि प्रख्यात लेखक डा रामदरश मिश्र की एक ग़ज़ल का एक शेर है : "जहाँ आप पहुँचे छलांगें लगा कर, वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे-धीरे" आप पर भी चरितार्थ होती है।

प्रताप सहगल: हो सकता है। मुझे उनका यह शेर बहुत अच्छा लगता है। बहुत सार्थक शेर है। अपना काम करते रहिये धीरे-धीरे। अब पहुँचिए नहीं पहुँचिए। पता नहीं किसे कहाँ पहुँचना होता है। मेरी समझ से तो हमें जीवन भर चलना ही होता है।

लालित्य ललित: अच्छा सहगल साहब, आपके पाठक जानना चाहते हैं कि आपकी पसंद के पाँच लेखक यदि है तो वे कौन से होंगे।

प्रताप सहगल: पसंद की रचनाएँ होती हैं। मुझे प्रसाद, भारतेन्दु, बच्चन, अज्ञेय, कमलेश्वर, मोहन राकेश, अमृतलाल नागर और मुक्तिबोध की रचनाएँ बहुत अच्छी लगती हैं। लेकिन मामला सिर्फ़ यहीं तक नहीं रुकता...बहुत से हिन्दी, अंग्रेज़ी और दूसरी भाषाओं के लेखकों की रचनाएँ भी अच्छी लगती हैं।

लालित्य ललित: यह सभी दिवंगत हो चुके हैं। जो जीवित हैं उनमें से?

प्रताप सहगल: अच्छा तो तुम राजनीति में ले जाना चाहतेहो।

लालित्य ललित: चलिए लेखिकाओं का नाम ही बता दें।

प्रताप सहगल: मैं इस राजनीति में नहीं पड़ना चाहता।

लालित्य ललित: तो आपका मतलब है कि आपको सभी लोगों की रचनाएँ पसंद आती हैं।

लालित्य ललित: मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुदगल आपकी पसंद की लेखिकाएँ हैं?

प्रताप सहगल: चित्रा मुदगल की कुछ कहानियाँ और उपन्यास आवाँ मुझे अच्छा लगा था

लालित्य ललित: दिविक रमेश की कोई रचना पसंद आई?

प्रताप सहगल: हाँ, उनका काव्य-नाटक 'खंड-खंड अग्नि' मुझे पसंद है। ऐसे तो जिस लेखक का नाम लोगे, शायद अपनी पसंद की कोई रचना बता दूँ, लेकिन क्या हम बातचीत इसलिए कर रहे हैं?

लालित्य ललित: अच्छा सहगल साहब यह बताइए कि जब एक लेखक अचानक संपादक हो जाए और सरे आम भिक्षाम देही कहने लगे तो आप क्या कहेंगे?

प्रताप सहगल: अच्छा प्रेम जनमेजय की बात कर रहे हो। वे लंबे समय से 'व्यंग्य-यात्रा' निकाल रहे हैं। यह एक अलग रंग की पत्रिका है। शुरू में वह लेखकों को मानदेय भी देते थे। वह एक मध्य-वर्गीय लेखक हैं। पत्रिका ज़िन्दा रखना चाहते हैं। हम भी चाहते हैं कि यह पत्रिका ज़िन्दा रहे तो इसके लिए वह भिक्षाम देही कर रहे हैं तो क्या ग़लत कर रहे हैं। मैं समझता हूँ कि यह भी समाज और व्यवस्था पर एक तरह का व्यंग्य ही है। वह व्यंग्यकार हैं, व्यंग्य की भाषा में ही समाज को संबोधित हैं।

लालित्य ललित: आपके मन में भी है कि आप पत्रिका निकालें, संपादक बनें।

प्रताप सहगल: मन में तो न जाने कब से है यह बात, बस कभी शुरूआत ही नहीं हो सकी। मन में अब भी है।

लालित्य ललित: तो यह सपना कब साकार होगा?

प्रताप सहगल: कहना मुश्किल है। पहले सोचता था रिटायर होकर निकालूँगा। रिटायर भी हो गया और अपने छुटे हुए कामों में जुट गया।

लालित्य ललित: अच्छा यह बताइए कि जब आपकी पहली रचना अख़बार में छपी थी, तब आपको कैसा लगा था?

प्रताप सहगल: बहुत अच्छा लगा था। आज भी जब मेरी कोई रचना छपती है तो अच्छा ही लगता है। रचना को छपित रूप में देखने का आनंद है। मेरी कहानी तो बहुत बाद में छपी, उससे पहले भी मेरी छोटी-मोटी चीज़ें छपती रहती थीं। किशोर वय की दहलीज़ को लाँघता हुआ किशोर अपना नाम छपा हुआ देखना चाहता है। मैं भी देखना चाहता था। समझ में नहीं आता था कि ऐसा क्या करें कि अखबार में नाम छप जाए। 'बूझो तो जाने', 'क्या आप जानते हैं?' से शुरू किया। साथ में मेरा नाम छपता था। तब यह नहीं था पता कि लेखक बनना है। यह प्रक्रिया धीरे-धीरे शुरू हुई। बच्चों की कविताए पढ़ीं और लिखने भी लगा। वे भी छप गई। जब कहानी छपी तो पिता जी और दूसरे तमाम लोगों को लगा कि लड़का लिखता है। फ़िल्मों पर बहुत लेख लिखे। उन्हें और उनके मित्रों को अच्छा लगता था, मुझे तो अच्छा लगता ही था।

लालित्य ललित: अच्छा, कई पुरस्कार मिले आपको। यह ख़ुद-ब-ख़ुद आपकी झोली मे चले आए या लेखन की सार्थकता को देखते हुए मिले या किसी ने अनुमोदन कर दिया। या कुछ और बात होती। क्योंकि आप सरल किस्म के आदमी लगे। क्या आपको लगता है कि पुरस्कार के लिए भी कुछ लोग राजनीति करते हैं।

प्रताप सहगल: हाँ, राजनीति तो करते हैं। बताते भी है कि हम राजनीति करते हैं क्योंकि उसके बिना कोई पुरस्कार मिलता नहीं है। मेरा अनुभव थोड़ा अलग है। और मैं कह सकता हूँ कि मैंने पुरस्कार लेने के लिए कभी कुछ नहीं किया। न लाबिंग की, न अनुमोदन करवाया। हर पुरस्कार के पीछे एक कहानी है। कोई दोस्त या चाहने वाला है। किसी को लगा, उसने अनुमोदन किया, मेरे कहने से नहीं। कभी कहा भी नहीं, न कोई भागदौड़ की। कुछ लोग हैं कि चिट्ठियाँ भिजवाते हैं कि फ़लाँ लेखक का फ़लाँ पुरस्कार के लिए अनुमोदन कीजिए या लाबिंग करते और करवाते हैं। स्पोंसर्ड मामला होता है।

लालित्य ललित: लेखन के अलावा जो आप यात्राएँ कर रहे हैं, खूब यात्राएँ कर रहे हैं, जिसमें हिन्दुस्तान के तमाम शहर शामिल हैं। कभी आप अमृतसर में होते हैं, कभी डलहौज़ी में या किसी और जगह तो यह यात्राएँ आपके लेखक को अतिरिक्त ऊर्जा देती हैं या लेखन में बाधा पहुँचाती हैं?

प्रताप सहगल: यात्राएँ आपको जोड़ती हैं। तरह-तरह के लोगों और संस्कृतियों से मिलने का अवसर देती हैं। वहाँ के रीति-रिवाज, तीज-त्यौहार, ऐतिहासिक जानकारियाँ आदि सब नज़दीक से देखने का अवसर देती हैं यात्राएँ। आपके लेखन को समृद्ध करती हैं। बाधक कैसे होंगी? आप कमरे में बंद करके लिख रहे हैं। आप अपने अंदर उतरते हैं, सही है, लेकिन एक्सटेंसिव होना भी ज़रूरी है। नए-नए अनुभवों से समृद्ध करती हैं यात्राएँ। इन यात्राओं का ही असर है कि यात्रा-वृत्तांत भी लिखने लगा हूँ। मज़ा आता है लिखने में। कोई व्यवधान नहीं।

लालित्य ललित: कौन सा प्रदेश आपको अच्छा लगा?

प्रताप सहगल: हर प्रदेश की अपनी गंध है, अपना रंग, अपनी छटा। हर बार अलग तरह का अनुभव। कश्मीर 1976 में पहली बार गया था, तब कुछ नहीं लिखा। दूसरी बार गया 2006 में तो 'कश्मीर 1976 से 2006 तक' लिखा। इस बहाने कश्मीर को कई नज़रियों से समझने की कोशिश की। अमृतसर की बात लो। वहाँ लोग अक्सर स्वर्ण-मंदिर में मत्था टेकने

जाते हैं। उनका मिशन होता है मत्था टेकना। मेरा ऐसा कोई मिशन नहीं रहा। चार-पाँच बार जा चुका हूँ। आखिरी बार की यात्रा में वाघा बार्डर देखना, वहाँ की झंडा सलामी देखना अलग तरह का अनुभव था। माता-पिता द्वारा सुनाई गई विभाजन की कहानियाँ मेरी स्मृति में अंटी पड़ी हैं। वहाँ अटारी के स्टेशन पर खड़े हो कर वे कहानियाँ हांट करने लगीं। यह यात्रा तकलीफ़देह यात्रा थी। और शाम को वाघा बार्डर पर जो माहौल होता है, समझ में नहीं आता कि यह दोस्ती है, दुश्मनी है, स्पर्धा है या सबका घालमेल। गोवा जाता हूँ तो समुद्र, नृत्य और सिरफ़िरी हवाएँ, मनाली जाओ तो रोहतांग पास की बर्फ़ और ट्राउट फ़िश का आनंद है। पचमढ़ी में शिव का कब्ज़ा है तो भीमबेटका में आदिम गंध की दास्तान है। सांची में बुद्ध से जुड़ जाते हैं तो मांडू में रूपमती और बाजबहादुर की कहानी का धर्म-निरपेक्ष पाठ मिलता है। फ़िर हर जगह के लोग, उनके रंग...क्या कुछ नहीं मिलता इन यात्राओं से।

लालित ललित: गोवा की फ़ैनी बड़ी मशहूर है।

प्रताप सहगल: फ़ैनी मुझे सूट नहीं करती, इसलिए नहीं पीता।

लालित्य ललित: आपकी अगली किताब कहीं भारत के चटख़ारे नाम से तो नहीं आ रही।

प्रताप सहगल: चटखारों के बिना ज़िन्दगी अधूरी है, लेकिन ज़िन्दगी सिर्फ़ चटखारा भर नहीं है। मैं अलग-अलग जगहों के अनुभव अर्जित करता हूँ। यह नहीं कि आप कहीं चार-छह दिन गए और वहाँ के एक्सपर्ट हो गए। लेकिन जितना भी जान पाता हूँ उसे संवेदनात्मक स्तर पर पाठकों के साथ शेयर करता हूँ। संवेदनात्मक अनुभव व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ देता है।

लालित्य ललित: आप लेखन को कितना समय देते हैं?

प्रताप सहगल: कोई निश्चित समय नहीं है। लिखता हूँ तो घंटों लिखता हूँ, नहीं लिखता तो कई-कई दिन नहीं लिखता।

लालित्य ललित: आपकी दिनचर्या में क्या-क्या शामिल है?

प्रताप सहगल: पढ़ना, लिखना, घूमना, रसोई में पत्नी का हाथ बंटाना और समाज सेवा।

लालित्य ललित: लघु नाटकों की जो आपने शुरुआत की, उससे कितनी शिद्दत से जुड़े?

प्रताप सहगल: एकांकी परिकल्पना वैस्टर्न है। हमारे यहाँ प्रहसन, भांड, वीथिका आदि की कल्पना रही है। यहाँ एकांकी की तर्ज़ पर नाट्य-लेखन रेडियो के आने से शुरू हुआ। वन-एक्ट प्ले आज बेमानी हो गया है। मैं नाट्य-लेखन में दृश्यों और हर दृश्य में चाक्षुक बिंब क्रिएट करने में ज़्यादा विश्वास रखता हूँ। हालाँकि मेरे पूर्णकालिक नाटकों में से कुछ में अंक-विधान है और कुछ छोटे नाटकों को भी एकांकी की तर्ज़ पर लिखा गया है लेकिन बाद में केवल दृश्य विधान के सहारे ही नाटक लिखने लगा। लघु नाटक में दृश्य विधान बहुत सीमित रहता है लेकिन विषय के विविध आयाम दिखाने पर कोई पाबंदी नहीं। लघु नाटक में एकांकी की अपेक्षा कई तरह की छूट है। इसमें लचीलापन ज़्यादा रहता है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए मैंने इन्हें एकांकी की अपेक्षा लघु नाटक कहना ज़्यादा मुनासिब माना है।

लालित्य ललित: क्या आपको लगता है कि प्रकाशक ने लेखक का दोहन किया है, शोषण किया है?

प्रताप सहगल: प्रकाशन आज पूरी तरह से एक व्यवसाय है और व्यवसाय की शर्तों पर ही चलता है। उसमें लेखक का दोहन तो होता ही है, पाठक का भी होता है।

लालित्य ललित: क्या आपको नहीं लगता कि हिंदी पाठक अपनी जेब ढीली नहीं करता। अंग्रेज़ी पाठक हैरीपार्टर की किताब हज़ार या बारह सौ रूपए में रात-रात भर लाइन लगा कर खरीदता है, हिंदी पाठक तो ऐसा नहीं करता। क्या होगा आने वाले समय का?

प्रताप सहगल: सिर्फ़ एक किताब की मिसाल देकर कुछ सिद्ध नहीं होता। कभी यही बात भूतनाथ और चंद्रकांता संतति के बारे में थी। आज हिन्दी भाषियों का एक वर्ग समृद्ध हो चुका है लेकिन किताब खरीद कर पढ़ने की संस्कृति अभी पनपी नहीं है। बहुत कम लोग हैं जो किताब खरीद कर पढ़ते हैं। लेकिन जो किताब मक़बूल होती है उसके कितने-कितने संस्करण होते रहते हैं। यह बात भी हम जानते हैं। चित्रलेखा, अंधायुग, आषाढ़ का एक दिन, गोदान, रंगभूमि, कामायनी, मधुशाला और न जाने कितनी ही नई पुरानी हिन्दी किताबें हैं जिनके कई कई संस्करण हो चुके हैं। दर असल बात यह है लालित कि यह जो गंभीर साहित्य है वो धीरे-धीरे जवान होता है और उम्र दराज़ भी।

लालित्य ललित: आपने भगवती चरण वर्मा, प्रेमचंद, भारती आदि का ज़िक्र किया लेकिन अभी भी महिला लेखिकाओं का ज़िक्र नहीं किया।

प्रताप सहगल: महिला भी और लेखिका भी...क्या कह रहे हो भाई। मेरी नज़र में लेखक एक लेखक है और उसका महिला या पुरुष होना मात्र एक संयोग है।

लालित्य ललित: किस लेखिका की कहानी आपको बहुत अच्छी लगीं।

प्रताप सहगल: मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती.....

लालित्य ललित: नई लेखिकाएँ

प्रताप सहगल: नई पुरानी फ़िज़ूल की बहस है। मुझे चित्रा मुदगल, मृदुला गर्ग, कुसुम अंसल, मीरा सीकरी, कमल कुमार आदि की कई कहानियाँ बहुत अच्छी लगी हैं।

लालित ललित: बिल्कुल नई

प्रताप सहगल: जगह बनाने में वक़्त लगता है।

लालित्य ललित: जगह बनाने में आपको वक़्त लगा?

प्रताप सहगल: मुझे नहीं मालूम, यह दूसरे बता सकते हैं।

लालित्य ललित: धन्यवाद, आपसे बात करके बहुत मज़ा आया।

❊

लालित्य ललित

बी-3/43, शकुंतला भवन, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063 मो. 9868235397

❊

प्रताप सहगल

एफ़-101, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली-110027

मो. 9810638563

ऐसा मेरा मानना है कि तुम दोनों ने न सिर्फ कल एक सुनहरी रात गुजारी है वरन दोनों ने यह भी समझा व जाना है कि तुम दोनों एक दूसरे से कितना प्यार करते हो... मुझे पूरा विश्वास है कि मैं अपने मिशन "प्यार ईसी को कहते हैं" - में सफल रही हूँ....

दरअसल वो ही प्रेम का फेसबुकिया फ्रेंड है जिसे मैं बहुत पहले से जानती हूँ... अगर तुम चाहो तो मैं तुम लोगों को उससे जरुर मिलवा सकती हूँ....

और हाँ, अभी मेरी फरमाईश पर एक शेर पोस्ट करने वाला है अपनी प्रोफाईल पर, जिसे तुम लोग मेरे पहुँचाने के पहले खोलकर मत पढ़ लेना.. हम एक साथ बैठकर पढेंगे ... पाँच मिनट बाद... ओके !

❊

फेसबुक पर पनपते प्यार को उजागर करता लघु उपन्यास

लेखक : श्याम कोरी 'उदय'
मूल्य : 99/-
संपर्क : vishwagatha01@gmail.com
Mobile : 0966-2514007

लघुकथा

तमाचा

- राम रतन यादव

सौदा अभी पटा ही नहीं था कि कहीं से एक पुलिस वाला आ धमका और आँखें तरेरकर कर अपनी खिचड़ी मूछों में ऐंठन लगाते हुए कड़का- 'क्यों वे कानून और व्यवस्था नाम की कोई चीज है या नहीं.... बोल... दिन-दहाड़े बीच सड़क पर लडकी फँसा रहा है...?' फिर आवाज़ में थोड़ी नरमी लाते हुए अपनी बात को आगे बढ़ाया, 'अच्छा, चल निकाल सौ रुपये वरना हवालात की हवा खिला दूँगा, समझे... |

युवक ने सिपाही की उल्लू जैसी गोल-गोल आँखों में झाँका और चेहरे पर गंभीरता के भाव उगाकर बोला- 'आपको शर्म आनी चाहिए... कुछ समझ-बूझकर बात किया करो... वह मेरी बहन है ... रास्ते में मिल गयी तो...|'

बोहनी खराब होने की आशंका से सिपाही के चेहरे पर उदासी उतर आयी | एक बार फिर उसने गहरी नज़रों से लडकी की तरफ़ देखा और शंका समाधान हेतू पूछा, 'क्यों री छोरी सचमुच यह तेरा भाई है या...|' सिपाही ने युवक की तरफ़ ऊँगली से इशारा करते हुए पूछा |

'हाँ...हाँ... यह मेरा भाई है...| लडकी की झुँझलाती हुई आवाज़ हवा में फ़ैल गई |

पुलिस वाला उदास मन दूसरी तरफ़ चल पड़ा | उसके जाते ही युवक मुस्कुराया और कहा, तेरी समझदारी से बला टल गई...' | फिर एक लंबी साँस खिंचकर उसने लडकी को गहरी दृष्टि से देखते हुए अपनी बात को आगे बढ़ाया | कहा, 'अच्छा अब जल्दी बता पचास रुपये में तैयार होती हो याँ नहीं...?'

लडकी की नीली आँखों में गहरी उदासी उतर आयी | उसने उदास आँखों से युवक की ओर देखा |

तब उसने दयाभाव दिखाते हुए कहा, 'अच्छा उदास मत हो मेरी जान... तू थोड़ी कम उम्र की है, इसलिए दस रुपये और दूँगा... चल अब तो खुश... |'

इतना कहकर युवक ने लडकी के गालों को छुआ |

उसी समय लडकी का दायाँ था हवा में लहराया और पलक झपकते ही उसने युवक के मुँह पर एक झन्नाटे दार तमाचा जड़ दिया |

फिर गुस्से से जमीं पर थूकते हुए बोली, 'बेशर्म कही का जिसे बहन कहा उसी के साथ सौदा... |'

❊

(कहानी - बर्फ पेज 20 से ...)

"मैं ज़रा बाहर घूम कर आती हूँ" .. मानिक ने दरवाजे पर खड़ी ऋचा को देखा और फिर उसे जाते हुए, घर से बाहर निकलते हुए और दरवाजा बंद करते हुए सुना।
ऋचा के पैर निरूद्देश्य रास्ता बना रहे थे और आँखें बर्फ की चादर के आगे कुछ देखने की कोशिश कर रही थी .. कि एक आवाज़ सुनाई दी .. " कौसानी कितना खूबसूरत है ना, लगता है कि हिमालय के शिखरों की शाश्वत बर्फ यहाँ ज़मीन पर ही उतर आई है".
ऋचा चौंक गई, ये आवाज़ यहाँ कैसे ??? फिर से सुनाई दिया .. "कौसानी !!!!" पैर रुक गए, शून्य को निहारती आँखें .. वो चर्च की तरफ मुड गई।
थोड़ी देर बाद चर्च में बेंच पर बैठी ऋचा दीवारों और छत की चित्रकारी को देखने लगी है, उनके रंग ... "शान्तिनिकेतन की होली याद है तुम्हे?" फिर से कोई बोला और ऋचा को सुनाई देने लगा .. ***" रांगा नेशा मेघे मेशा प्रभात आकाशे ... नवीन पाताय लागे रांगा हिल्लोल .. खोल द्वार खोल"***
इन्ही आवाज़ों के बीच कुछ और परिचित आवाजें उभरने लगी ... " तुझसे छह साल बड़ा है, शक्ल सूरत तो खैर अब क्या कहें तू खुद भी तो एक बार मिल ही चुकी है .. हाँ well settled तो है .. पर फिर एक बार सोच ले .. कहीं बाद में कोई पछतावा ना हो .. उस परदेस में कोई नहीं होगा तेरी बात सुनने वाला .." ऋचा ने आवाजों को परे धकेल कर क्रॉस पर टंगे ईसा पर अपनी नज़रें केन्द्रित करने की कोशिश की
पर फिर वहाँ नहीं बैठा गया ऋचा से .. लौट आई .. घर ..
"आज खाना क्या बनाऊं ?"
"पिज़्ज़ा आर्डर कर दो ".
खिड़की के बाहर बर्फ की सफेदी अब धूसर मटमैली और स्याह चादर ओढ़े सो गई है लेकिन टोरंटो अभी भी जाग रहा है .. घरों से झांकती रोशनियाँ, सड़कों पर जवान होती "नाईट लाइफ" और आवाजें ... हर तरफ से, हर तरह की ..
ऋचा ने अगले दिन के किसी केस की हियरिंग के लिए क़ानून के जंगल को खंगालना शुरू कर दिया है .. पर अब कौसानी की आवाजें , विश्वभारती के रंग और बहुत सी आवाजें उसके दिमाग में घूमने और शोर मचाने लगे हैं। लिविंग रूम में आई और सब कुछ को देखने लगी और फिर अगले कुछ सेकण्ड्स के बाद वो मानिक के कमरे में हैं .. मानिक भी अब स्टॉक मार्किट के आंकड़ों और अर्थव्यवस्था की उठापटक के बीच मुनाफे के रास्ते खोज रहा है.
"कुछ काम है ?"

"कुछ चाहिए .. क्रेडिट कार्ड प्रॉब्लम ?"

"क्या फर्क है मुझमें और घर के बाकी सामान में और क्या फर्क है तुम में और घर की दीवारों और छत में ?"
"कुछ भी नहीं .. इन सब को और तुम्हे भी ... मैंने पैसों से ही खरीदा है लेकिन तुम्हे ना इस घर के लिए कोई EMI देनी पड़ती है और ना .. ." लेकिन कहते कहते मानिक समझ ही गया कि जितना सवाल बेतुका था उतना ही या उस से भी ज्यादा बेहूदा उसका जवाब था क्योंकि सवाल करने वाली अब कमरे से बाहर जा चुकी थी।
टोरंटो जाग रहा था और बर्फ गहरी नींद सो रही थी, "सबकुछ" घर के अन्दर और खिड़की से बाहर अपनी जगह पर था .. कुछ नहीं बदला था लेकिन ऋचा के अन्दर कौसानी, विश्वभारती और छूट गए समय के रंग और आवाजें सब मिलकर एक ऐसा साइक्लोन पैदा कर रहे थे जो "सबकुछ " को तोड़ फोड़ रहा था। और अब मानिक भी उस सबकुछ के बीच आकर खड़ा हो गया ..
"जाओ, जाकर सो जाओ।"
" मुझे अब नींद नहीं आती ..."
पर ये जवाब सुनने के लिए मानिक रुका नहीं था .. कमरे में लौट गया ..
बर्फ अब पिघलने लगी है .. बहने लगी है, रंग भी मिटने लगे हैं .. मानिक उलटे पैरों वापिस आया .. ऋचा अब भी साइक्लोन के बीच खड़ी है ... नींद को तलाश रही है।
" क्या तुम्हे मेरी ज़रूरत महसूस नहीं होती ?"
" ज़रूरत ...!!!!!!" आँखें गुस्से और हैरानी से फ़ैल गई मानिक की।
"क्या तुम मुझसे प्यार करती हो ... बोलो ..मेरी तरफ देखो और बताओ !!!!!" मानिक उस साइक्लोन को बांह पकड़ कर झिंझोड़ रहा था .. चीख कर पूछा था लेकिन फिर भी ऋचा को आवाज़ बहुत दूर से आती हुई महसूस हुई ...
मानिक अब वहाँ नहीं है, ऋचा भी अब अपने कमरे में सो रही है।
टोरंटो सो गया है .. बर्फ जाग गई है .. उसकी स्याह चादर अब और गहरी हो गई है क्योंकि शहर की बत्तियां अब बुझने लगी है।

✻

मंजुश्री की कविताएं सहज जीवन के उतार-चढावों से गुजरी हुई कविताएं है| अहसासों व अनुभूतियों को अपनी पूरी संजीदगी से ध्वनित करने में कविताएं पूरी तरह सक्षम है | अभिव्यक्ति का प्रवाहित पैनापन सीधे दिल और दिमाग तक अपनी पूरी ताकत से असर छोड़ जाते हैं | विद्रूपताओं को अपने आप में झाँक पाना बहुत कडवी सच्चाई होगी किंतु मंजुश्री समाज सापेक्ष विद्रूपताओं को पूरी शक्ति के साथ निहारने तथा जस का तस दर्पण के सदृश्य सामने रख देने का माद्दा अपनी कविताओं में रखती हैं | 'मौन का संवाद' मंजुश्री की कविताओं का यह प्रथम संकलन एक ऐसी यात्रा की अनुभूतियों से लबरेज है, जिसमें मार्गमें आने वाला हर दृश्य आपको संवेदना के स्तर पर न केवल झकझोरता है, अपितु सोचने पर बाध्य भी करता है |
रिश्ते-नाते, घाव, दर्द, सन्नाटा, खालीपन, जीवन की रिक्ति, ऊँचाईयों पर होने वाली कशिश, रोज़मर्रा के जीवन की नियति- ऐसा कोई भी संवेदना का आयाम छूटता नहीं दिखाई देता है जिसमें मंजुश्री की कविताएं दो-चार होकर न गुजारी हुई हों | **- दुर्गा हाकरे** **M. 09826151339**

अभ्यास

साहित्य के सिरमौर डॉ.धर्मवीर भारती के वेदना के चित्र

- गीतिका 'वेदिका'

सुप्रसिद्ध साहित्यकार, कहानी, काव्य, उपन्यास निबंध, आलोचना आदि विधाओं को अपने लेखन से समृद्ध करने वाले हिन्दी के अनन्य सेवक डॉ धर्मवीर भारती 25 दिसंबर 1926 प्रयाग में जन्मे|

उनकी लेखनी ने कई कालजयी सृजन को जन्म दिया| जिनमें गुनाहों का देवता, सूरज का सातवां घोड़ा (उपन्यास), ठंडा लोहा, वर्ष कनुप्रिया (काव्य रचना), प्रगतिवाद : एक समीक्षा, मानव मूल्य और साहित्य (आलोचना), ठेले पर हिमालय, पश्यंती (निबंध) उल्लेखनीय हैं|

पद्म श्री से सम्मानित हिन्दी के शीर्ष लेखक डॉ धर्मवीर भारती की वेदना का निर्झर उनकी काव्य रचनाओं से बरबस ही छलक उठता है|

खड़ी बोली के शीर्षस्थ कवि डॉ धर्मवीर भारती ने देशज शब्दों को भी बड़े अपनत्व से अपनाया-

बरसों के बाद उसी सूने- आँगन में
जाकर चुपचाप खड़े होना
रिसती-सी यादों से पिरा-पिरा उठना
मन का कोना-कोना

उनकी भावना मे वेदना भी सकारात्मक्ता के भाव मे डूबी हुयी है-

तुम कितनी सुन्दर लगती हो
जब तुम हो जाती हो उदास!

वेदना मे पूरी तरह से टूट जाने पर भी अपनी उपयोगिता को भली भांति और कौन सिद्ध कर सकता है-

मैं
रथ का टूटा हुआ पहिया हूँ
लेकिन मुझे फेंको मत!
अपने पक्ष को असत्य जानते हुए भी
बड़े-बड़े महारथी
अकेली निहत्थी आवाज़ को
अपने ब्रह्मास्त्रों से कुचल देना चाहें
तब मैं
रथ का टूटा हुआ पहिया
उसके हाथों में
ब्रह्मास्त्रों से लोहा ले सकता हूँ!
मैं रथ का टूटा पहिया हूँ

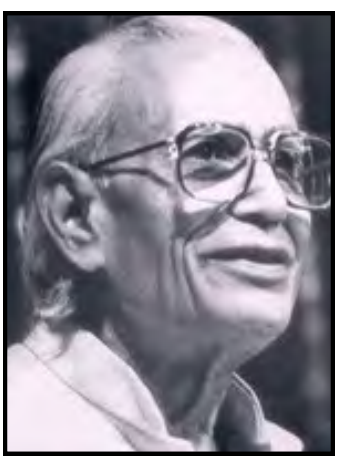

वेदना के मर्म को धर्मवीर भारतीजी ने जिस आत्मियता से अपने आप मे समा कर उसे सदय जीवन के उच्चतम आयाम से जोड़ दिया| उससे सहज ही जाना जा सकता है की वे जीवन मूल्यों को आशान्वित होकर आत्मसात करते थे-

जाने क्यों कोई मुझसे कहता
मन में कुछ ऐसा भी रहता
जिसको छू लेने वाली हर पीड़ा
जीवन में फिर जाती व्यर्थ नहीं

सिद्ध साहित्य पर श्री धीरेन्द्रजी के निर्देशन मे शोध प्रबंध लिख कर पीएच. डी. की पत्रोपाधि अर्जित करने वाले मुखरित रचनाकार को अनेक पुरुस्कारो से अलंकृत किया गया| जिनमे मुख्य है- हल्दी घाटी श्रेष्ठ पत्रकारिता पुरस्कार मेवाड़ फाउंडेशन (1984), भारत भारती सम्मान (1989), महाराष्ट्र गौरव (1990), व्यास सम्मान (1994) और भी कई सम्मान प्राप्त हुये| उनकी साहसी पीड़ा की साहसी अभिव्यक्ति-

ईश्वर न करे तुम कभी ये दर्द सहो
दर्द, हाँ अगर चाहो तो इसे दर्द कहो
मगर ये और भी बेदर्द सजा है ए दोस्त!
कि हाड़ हाड़ चिटख जाए मगर दर्द न हो!

यह संवेदना के प्रति गहन उनकी उदारता ही थी जो उन्होने पीड़ा भी पूजा का गीत बनाकर गायी|

वे सब बन जाते पूजा गीतों की कड़ियाँ
यह पीड़ा, यह कुण्ठा, ये शामें, ये घड़ियाँ

अपनी साहित्यिक यात्रा मे उन्होने प्रेम की पीड़ा, असंतोष की व्यथा और विरह के भावुक स्पंदन को प्रतीक्षा करने को कहा, किन्तु मन मे कुंठा को स्थान नही दिया| यह उनकी लेखनी की महानता है

शाम है, मैं उदास हूँ शायद
अजनबी लोग अभी कुछ आएँ
देखिए अनछुए हुए सम्पुट
कौन मोती सहेजकर लाएँ
कौन जाने कि लौटती बेला
कौन-से तार कहाँ छू जाएँ!

सुविख्यात साप्ताहिक पत्रिका **धर्मयुग** के प्रधान संपादक डॉ. धर्मवीर भारती ने **अभ्युदय**, **निकष** और **आलोचना** आदि महत्वपूर्ण पत्रिकाओं को भी अपने सम्पादन से समृद्ध किया| उन्होने हिन्दी को जिस पुरातन शब्दों के मोह से विलग किया और उसे आम बोल चाल वाले शब्दों को को जो महत्ता दिलाई, वंदनीय है| सरलता से घातक सत्य कह देना उनके लिए कभी दुष्कर नही प्रतीत हुआ| महाभारत आधारित कालजयी गीत-नाट्य 'अंधायुग' जिसे अत्यंत जटिल एवं तनाव पूर्ण परिस्थितियों से होकर बीतना पड़ा| यह एक ऐसा अभिशप्त कथानक था जिसमे पीड़ा, द्वेष, राग, अवसाद, सत्ता के संघर्ष, स्वजन के रक्त से सने तन मन और आत्माएं, लोभ, विकार, हत्या, घृणा, छटपटाहट, हिंसा, निर्दयता, बर्बरता, विवशता, दुख, टीस, करुणा, उत्तेजना उबाल, संकीर्णता और स्वार्थ धसा-धसा के समावेश होने पर भी, उन्होने उसे राग और धुनमय कर नाट्य विधा को नव-श्वासों से सहारा दिया है, अद्भुत है-

टुकड़े टुकड़े हो बिखर चुकी मर्यादा
उसको दोनों ही पक्षों ने तोड़ा है
पांडव ने कुछ कम कौरव ने कुछ ज्यादा
दोनों ही पक्षों मे विवेक हारा
दोनों ही पक्षों मे जीता अंधापन

जीवन के सोपान के प्रत्येक स्तर पर उन्होने सम्पूर्ण आस्था से पीड़ा का सामना कर के उसे परास्त किया है, उनकी कविता की जीवटता अनन्य है-

रुका तू, गया रुक जगत का सृजन,
तिमिरमय नयन में डगर भूल कर
कहीं खो गई रोशनी की किरन
अलस बादलों में कहीं सो गया
नई सृष्टि का सात-रंगी सपन
रुका तू, गया रुक जगत का सृजन,
अधूरे सृजन से निराशा भला
किसलिए जब अधूरी स्वयं पूर्णता?
सृजन की थकन भूल जा देवता!

हिन्दी लेखनी के महान साधक को शत शत नमन !!

❊

रिपोर्ट

हिन्दी दिवस

जयपुर के जवाहर कला केन्द्र में 14 सितंबर 2013 को पूर्वान्ह 11-30 पर भाषा एवं पुस्तकालय विभाग, जयपुर द्वारा हिन्दी दिवस के अवसर पर एक सुरुचिपूर्ण समारोह आयोजित किया गया, जिसमें राज्य के शिक्षा मंत्री बृजकिशोर शर्मा मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित रहे। नंद भारद्वाज ने मुख्य वक्ता के रूप में हिन्दी के महत्व पर प्रकाश डाला और प्रमुख शासन सचिव वीनू गुप्ता ने समारोह की अध्यक्षता करते हुए विभागीय गतिविधियों से अवगत कराया। इस अवसर पर विभागीय पत्रिका 'भाषा परिचय' के नये अंक का लोकार्पण भी किया गया तथा बोर्ड परीक्षा 2013 में हिन्दी विषय में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाले स्कूली छात्र-छात्राओं को पुरस्कृत भी किया गया।

*

लघुकथा

जड़ की समझ

- मनोज अजीज़

ट्रेन तो लेट थी ही, रस्ते की भीड़ भी कम न थी । काफ़ी जद्दो-जहद के बाद सुभाष ढकुरिया पहुंचा । इंटरव्यू की जगह साफ़ पता नहीं थी और वह धैर्य खोता जा रहा था । महानगरों में लोगों की व्यस्तता बिना काम के भी रहती है । किसी से पूछे भी तो कोई सुनकर भी अनसुने की ढोंग रचता और कोई इसकी अंग्रेजी मिश्रित हिंदी को समझ नहीं पाता । मेन रोड की बाँयीं ओर खड़े होकर कभी आती-जाती गाड़ियों को देखता तो कभी लम्बी सांसें छोड़कर किसी रेलिंग के सहारे खड़ा रहता । इसी बीच अपने भारी थैले को कंधे से उतारकर एक चबूतरे पर रख कर बैठने जाता कि उसे थोड़ी ही दूरी पर एक महिला दिखी जो एक छोटी सी कुटिया के बाहर पैंट-कमीजों पर लोहे की स्त्री फेर रही थी । सुभाष की नज़र उस महिला की साड़ी पर पड़ी । उसने साड़ी के पहनावे पर अंदेशा लगाया कि वह महिला उसी के क्षेत्र की होगी । थैले को फिर कंधे पर लादा और कदम बढ़ाया। पास जाकर खड़ा हुआ तो कोई ग्राहक समझकर महिला ने थोड़ी-मोड़ी बांग्ला में कहा -- कि काज आछे बबुआ ?

सुभाष उस महिला की बांग्ला से असहजता समझ गया और उसके मुंह से निकल पड़ा -- गोड़ लग तनी माँ जी ! शूट-बूट वाले किसी युवक से उस विराट नगर में एक स्त्री करने वाली महिला को ये उम्मीद नहीं थी । वह काम छोड़कर सामने आयी और बोली-- जीते रह बबुआ ! दोनों एक दूसरे के हाथों को पकड़ रखे थे और वह स्पर्श उनके लिए ' प्यासे को पानी' जैसा था । समय कम था । सुभाष ने टूटी-फूटी भोजपुरी में झट से माफोई ऑफिस का पता पूछा । महिला ने जवाब दी-- ऊ पुलवा भिरि बबुआ । नजिके ह । बैठ जा, तनि पानी पी ल । सुभाष तो नौकरी की ता..तलाश में था और उसे जल्दी ऑफिस पहुंचना था पर वह थम गया और जम भी गया । पानी पिया, बातें की ।

उसे पता चला वह महिला उस कुटिया में अकेले ही वैधव्य-जीवन बीता रही है और गाँव-घर से भी नाता टूट चूका है । सुमधुर कही जानी वाली बांग्ला भी उन्हें थपेड़ लगता है और सुभाष का गोड़ लगना उनकी घर-वापसी जैसी थी । सुभाष इंटरव्यू में अच्छा किया । नौकरी की खबर बाद में मिलती । उसे घर वापस आना था । फिर ट्रेन से सफ़र शुरू । रस्ते भर उस महिला की बोली कानों में गूंजती रही । घर पहुँच कर सुभाष ने अपने पिता से कहा-- पापा, आज मेरी भाषा मेरी शिक्षा से अव्वल निकली और वही मुझे इंटरव्यू दिला पाई वरना मैं सिर्फ अंग्रेजी की दुनिया में गोता लगाता रहता और ऑफिस तक शायद पहुँच ही नहीं पाता । मेरी भाषा की महत्ता मुझे समझ में आई । सुभाष के पिता भी अपनी गलती को मन ही मन भांप कर सहम सा गए और एक लम्बी साँस लेते हुए ' काम ऑन माय सन' न कहकर ' आ जा बबुआ, गले लग जा ' कहते हुए गले मिले। घर के अन्दर से माँ चीखती हुई बोली-- अब समझे जी ? कहते थे न जड़ मत काटिये ! माँ खाने पर बुलाई तो सुभाष ने स्फूर्ति से जवाब दिया-- आव तनि माँ ।

❊

पता- इच्छापुर, ग्वालापाड़ा , पोस्ट-आर आई टी, जमशेदपुर-831014 , झारखण्ड (भारत) फोन- 09973680146

कहानी

अतीत का रावण

- विनय कुमार सक्सेना

मथुरा भूमि में रासलीला और रामलीला का प्रभाव अपने लेखन पर भी रहा. कृष्ण की पावन जन्म-भूमि निश्छल व सौहार्द जीवन-शैली का प्रभाव इनके लेखन में झलकता है.
vksaxena45@gmail.com

वर-वधु विवाह वेदी पर सुशोभित हैं। पंडित जी का मंत्रोच्चार चल रहा है। वर-वधु के परिवारों के सदस्य एवं अतिथि विवाह संस्कार के साक्षी बने उपस्थित हैं। मंगलमय वातावरण है। वर के कान कुछ भी श्रवण करने में असमर्थ हैं। उसके मानस पर अतीत की स्मृतियाँ मंद-मंद आघात कर रही हैं।

कौमुदी ने सांकेतिक, फिर कुछ अस्पष्ट और अंततः मुखर हो मुझ पर अपना प्यार प्रकट किया। मुझे भी वह अच्छी लगती थी। अपने माता-पिता, परिवार को समझा लेने का उत्तरदायित्व लेने को भी वह तत्पर थी। मैं ही कायर था, अपने मन की बात न कौमुदी से कह सका, न अपने माता-पिता से। दरिद्र माता-पिता ने कौमुदी का विवाह एक ऐसे व्यक्ति से निश्चित किया जो कौमुदी के लिए सर्वथा अयोग्य था। उस समय भी उसने विद्रोह करने की बात करी थी किंतु मैं भीरू अपने दोनों के प्यार को अपने परिवार से न कह सका। विवाहोपरांत विदा से कुछ पूर्व कौमुदी ने कहा था, "शशि, यह मेरी विदा की पालकी नहीं मेरी चिता है." उसकी यह बात सुन मेरी आँखों ने अश्रु की वर्षा की थी. मेरे आंसू देखकर वह रोष पूर्वक बोली थी, "कायर ! तेरे यह आंसू भी मेरी चिता की अग्नि को नहीं बुझा सकेंगे." उसके वह अंतिम शब्द थे. विदा के पूर्व ही हृदयाघात से कौमुदी इस दुनिया को अलविदा कह गई. आज भी वह हृदयविदारक दृश्य शशि के मनोमस्तिष्क को झकझोरता रहता है. कौमुदी के प्यार और अपनी कायरता को वह कभी भुला नहीं सका. परिवार के विवाह के आग्रह को वह दो वर्ष तक टालता रहा और अंत में पिता के आदेश के समक्ष एक बार पुनः कायर बन विवश हो गया. विवाह वेदी पर बैठे हुए भी कौमुदी की स्मृति से उसकी आँखें भीगी जाती थीं.

शशि की आँख से एक अश्रु कण वधु के हाथ पर टपक गया. विवाह करते समय इनके आंसू आ रहे हैं. क्या यह भी मेरे सामान विवशतापूर्वक विवाह कर रहे है? यह कैसा विवाह है जिसका आधार अपनी नहीं दूसरों की इच्छापूर्ति है.

पण्डितजी के कहे अनुसार वचनों का आदान-प्रदान हुआ, सात फेरे लिए गए. पण्डितजी ने घोषणा की धर्म सम्मत, समाज की अनुमति द्वारा आप दोनों अब पति पत्नी हो गृहस्थ आश्रम में प्रवेश के अधिकारी हुए.

विदा के समय वधु की आँखों से एक भी आंसूं नहीं आया. कार में बैठ ससुराल गमन करते समय वर-वधु के मनमे एक ही प्रश्न था – क्या सत्य ही हम परिणय सूत्र में बन्ध पति-पत्नी हो गए?

ससुराल यात्रा के दौरान वधु के मन में विचारों का ताँता लगा था – अपने प्रेम की खातिर अपने प्रेमी के आग्रह पर उसके साथ घरसे भाग क्यों नहीं गई? हम दोनो ने कॉलेज की कैंटीन में, यमुना तट पर विहार करते हुए कितने ही सुंदर पल गुज़ारे. सुखद भविष्य की कल्पना के हिंडोले पर सवार चाँद-तारों की सैर करी. मेरे विवाह का सुन उसके साथ उसने कहीं दूर भाग चलने का आग्रह किया था किन्तु माता-पिता का मान-सम्मान, लोक-लाज का भय प्रहरी बन घर की देहरी पर खड़े हो गए.

मैं वह देहरी नहीं लांघ सकी. आया था एक दिन शंतन मझे विवाहित जीवन की शुभकामनाएं अर्पित करने.

आँखों में नैराश्य जल भरे वह बोला था, "कुमुदिनी सदा सुखी रहना. मुझे तो अब एकाकी ही जीवन की यात्रा करनी है."

कुमुदिनी के नैनों से एक आंसू का एक कतरा शशि के हाथ पर मोती बन गिरा. नासिका तक घूंघट में छुपी आँखों का रहस्य शशि पर प्रकट हो गया. माता-पिता व परिवार जानो से विदा लेते समय शुष्क नैन ससुराल के निकट पहुँच कर क्यों भीग गए?

घर पर वर-वधु के स्वागतोपरांत कुलोचित रीति-रस्म हुए. संध्या को राम-लीला में शशि के परिवार हेतु आरक्षित स्थान शशि व कुमुदिनी को दे वह अन्यत्र चले गए. राम-रावण युद्ध प्रसंग चल रहा था. विरह संतप्त सीता को त्रिजटा सांत्वना दे रही थी. कुमुदिनी के मन में आया यदि शंतन भी मेरे हृदय में आसीन रहा तो मैं कभी पत्नी नहीं बन सकूंगी. शशि के मन में भी अंतर में भी द्वंद्व छिड़ा हुआ था. अपनी पीठ पर लदे हुए अतीत के रावण को यदि मैंने च्युत न किया तो मैं पति-पद हेतु सर्वथा अयोग्य हूँ.

दशहरे का पर्व आगया तीन दिन लगभग संवादहीन व रातें एक कमरे, एक ही पलंग पर अपने अपने मन से लड़ते हुए शशि व कुमुदिनी ने अपरिचितों सी व्यतीत कर दीं. दोनों में से कोई भी निकटता पाने को उत्सुक न था.

रावण के दहन के समय शशि कुमुदिनी से मंद स्वर में बोला, "मेरी पीठ पर मेरे अतीत का रावण लदा हुआ है, उसे ढोते ढोते मैं थक गया हूँ. आज उसे उतार रावण के जलते पुतले में फ़ेंक दूंगा. मैं आपसे मित्रता की अपेक्षा रखता हूँ. अपने नाम कुमुदिनी अर्थात चांदनी की मित्रता की शीतलता यदि मुझे प्रदान कर सकें तो आपका आभारी रहूँगा.

इसके पूर्व की कुमुदिनी कुछ बोलती रामके धनुष से प्रक्षेपित अग्नि-बाण रावणके नाभिक्षेत्रमे जा समाया. रावण का पुतला धूं धूं करता जल उठा. पटाखों का शोर, आतिशबाजी की चकाचौंध होने लगी. पटाखोंके विस्फोट होने पर भयभीत हो कुमुदिनी शशि के हाथ थाम अगले ही पल तुरंत छोड़ देती.रावण के पुतले से उठती ज्वालायें क्रमशः शान्त हो गयीं. रामलीला मैदान में एकत्रित जनसमूह अपने अपने घरों को लौट चला. शशि राख होते रावण को देख रहा था.आज अच्छाई की बुराई पर जीत की परिकल्पना शशि समझ रहा था. कुमुदिनी कभी राख के ढेर में दबी चिंगारियों को और कभी शशि की ओर देखती अपनी ही उधेड़बुन में खोई थी. शशि ने आगे बढ़ अधजले बांस अथवा रावण की अस्थि को उठा अपने सर के पीछे अपनी पीठ तक ले जा कर बलपूर्वक रावण की राख में फ़ेंक दिया.

"आओ घर चलें ." शशि हाथ झाड़ते हुए बोला.

राह में कुमुदिनी सोचने लगी – इन्होने संभवतः अपनी पीठ पर लदे रावण की अंतिम अस्थि का भी होम कर दिया है. मुझसे मित्रता की आकांक्षा है इन्हें, मेरी मित्रता की चांदनी में विश्राम चाहते हैं. पंडितजी के कराये वचनो का जो प्रभाव नहीं हो सका, शशि के दो मधुर बोलों ने कर दिया. शायद सभी की पीठ पर दुर्दांत अतीत का रावण सवार होता है. जो इस से मुक्ति पा लेता है उसका भविष्य उज्वल हो जाता है. मैं स्वयं ही अपना हरण स्वीकार करने की सीमारेखा पर थी. शंतन के विद्रोह ने मेरे मन को आहत किया था. उसके साथ गमन उचित होता अथवा अनुचित किन्तु इनकी मित्रता को अस्वीकार करना सर्वथा अनुचित होगा. मुझे भी सीता के समान अग्नि पथ से राम की ओर पग बढ़ा देना चाहिए. आज विवाह के पांच दिनों तक इन्होने कभी अपने पति होने के अधिकार की माँग नहीं करी.

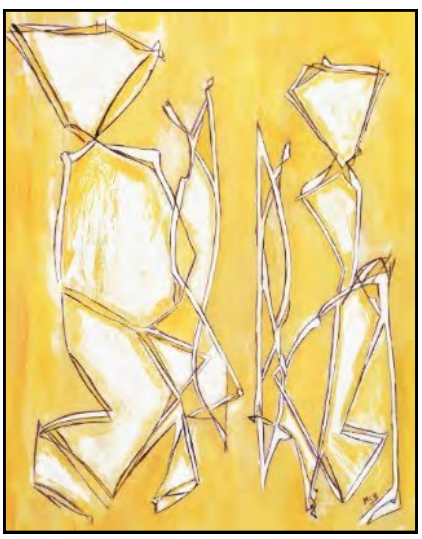

घर पर भी उल्लासपूर्वक हवन कर दशहरा मनाया गया. विशेष भोजन बना मिठाइयों का वितरण और बड़ों ने छोटों को खूब आशीर्वाद दिए. शशि और कुमुदिनी माता-पिता के विशेष कृपा के पात्र बने.

मथुरा से दिल्ली अपने नौकरी पर जाने से पूर्व शशि ने कुमुदिनी से कहा, "एक सप्ताह तक आवास का प्रबंध कर मैं आपको लेने आऊँगा." कुमुदिनी सर झुकाए खड़ी रही.

"मैंने दूसरी बार आप से संवाद का प्रयास किया किन्तु आपसे मौन के अतिरिक्त कुछ नहीं पाया."

"हमारे समाज में लड़की को कुछ कहने का अधिकार ही कहाँ होता है"

शशि को कुमुदिनी के स्वर में पीड़ा का आभास हुआ.

"अब आप मात्र एक लड़की ही नहीं मेरी पत्नी भी हैं और उस से भी अधिक मैंने आपको अपना मित्र माना है. अब आप चाहे जिस संबंध के अधिकार से मुझसे कुछ भी कहने अथवा माँग करने को स्वतंत्र हैं." शशि के मुख से ऐसी मधुर वाणी सुन कुमुदिनी के अंतर में ख़ुशी की लहर दौड़ गई. पहली बार उसने शशि को नज़र भर देखा. "आपने मुझे पत्नी से पूर्व मित्र का पद दे गौरवान्वित किया है. आपने मेरे नाम का अर्थ बताते हुए मेरी मित्रता की चांदनी में शीतलता पाने की आशा करी है. आपका नाम शाशि है तो यह चांदनी भी तो आपसे ही है. शशि भी शीतलता का पर्याय है. मेरा दग्ध ह्रदय भी आपसे शीतलता की कामना रखता है." कुमुदिनी निर्मल मन, मासूम निगाहों से शशि की ओर देखती हुई बोली.

"कहिये किस विधि से मैं ऐसा कर सकता हूँ." शशि ने भी कुमुदिनी के नैनों में झाँका.

"उचित समय आने पर कहूँगी." कुमुदिनी को शशि के प्रश्न करने के भाव से संतोष हुआ.

"यह उचित समय नहीं है?"

"आपने मुझे मित्र व पत्नी स्वीकार किया है, जिस घड़ी मैं ऐसा कर पाऊंगी वही उचित समय होगा." कुमुदिनी के नैन झुक गए. पलकों के झरोखों से स्तंभित शशि की ओर देखा. शशि के मन ने कहा – इनके मन में भी संभवतः इस सम्बन्ध को लेकर कुछ प्रश्न उठ रहे हैं. प्रकट में बोला, "क्या आपकी भी यही धारणा है कि पंडितजी द्वारा मंत्रोत्चार, वचनों के आदान-प्रदानादि करा देने मात्र से ही हमारा पति-पत्नी का सम्बन्ध स्थापित नहीं हो गया है?"

"संभवतः अभी कुछ और भी शेष है, इस सम्बंध के स्थापित होने में." कुमुदिनी ने धीर गंभीर स्वर में कहा.

"मैंने अपनी पीठ पर लदे अतीत के रावण की अंतिम अस्थि को उस अग्नि में झोंक दिया है. अब उसकी भी राख हो जाने की प्रतीक्षा में हूँ."

"क्या यह सरल था?"

"आपका साहचर्य पा यह सरल हो गया था."

"मुझे मेरे भूत से मुक्ति क्यों नहीं मिल रही? वह रावण मेरा हरण करने को अब भी क्यों प्रयास रत है?"

"यह मेरी कमी है, स्वयं को मैं सक्षम करने का प्रयास करूँगा. अब मैं चलने को तत्पर हूँ. आप मेरी मित्रता, मेरे विश्वास की लक्ष्मण रेखा में स्वयं को सुरक्षित करने की चेष्टा कीजिये. सम्भव है जब मैं आपको लेने आऊँ आपके भूत का रावण मेरी लक्ष्मण रेखा से पराजित हो वापिस लौट जाये और...."

शशि की बात पूरी न हो सकी, पिता ने विलम्ब होने की चेतावनी दी.

"कुमुदिनी जी अभी के लिए अनुमति दीजिये." शशि ने कुमुदिनी के हाथों को अपने हाथों में ले अपनी आँखों पर रखा और चल दिया.

कुमुदिनी को अपने करतल पर ओस के कण दिखायी दिए. कुछ बोलना चाहा किन्तु कंठ अवरुद्ध हो गया.एक सप्ताह में शशि का आना नहीं हो सका. फ़ोन आया था, अवकाश का प्रार्थना पत्र स्वीकार नहीं हुआ. दीवाली पर ही आना सम्भव होगा. कुमुदिनी व्याकुल हो गई. मुझे यह व्याकुलता क्यों हुई? क्या मेरा मन शशि को स्वीकार करने लगा है?

दीवाली से एक दिन पूर्व शशि घर आया. शशि को देख कुमुदिनी का दिल धड़क उठा. शशि को आया देखा मुझे ऐसा क्यों अनुभव हुआ मानो तृषित धरती पर सावन की फुहारें पड़ी हों.रात को वही कमरा, वही पलंग किन्तु उस पर अपिरिचित नहीं थे. "कुमुदिनी जी, कल आप मेरे साथ कृष्ण जन्म भूमि चलेंगी?"

"सहर्ष!" कुमुदिनी चकित, मेरे मुहं से यह कैसे उच्चरित हो गया.

कृष्ण जन्म भूमि. भगवान के दर्शन कर दोनों पोतड़ा कुंड पर आ बैठे. कभी यह जल से भरा रहता था किन्तु नगरीकरण के साथ इसमें आने वाली नहर लुप्त हो गई और अब वर्षा का जितना भी जल इसमें आ जाए बस उतने में ही यह अपने दुर्दिन गुज़ार रहा है.

"कुमुदिनी जी, मैंने दशहरे पर अपने अतीत के रावण की अंतिम अस्थि तक भस्म कर दी थी किन्तु दिल्ली जाकर अनुभव किया की उसके कुछ अवशेष अब भी मुझसे चिपके हुए हैं. उनसे मुक्ति पाने में मेरी सहायता कीजिये." शशि ने कुमुदिनी का हाथ थामते हुए कहा. कुमुदिनी ने अपना हाथ छुड़ाने की तनिक भी चेष्टा नहीं की, अपितु आश्वासन पूरित अपना दूसरा हाथ भी शशि के हाथ पर रख दिया. कुछ पल कुमुदिनी के स्पर्श को आत्मसात कर शशि ने अपना अतीत कुमुदिनी पर प्रकट करना आरम्भ कर दिया. शशि की बात समाप्त होते न होते, कुमुदिनी के मुख से उसका भूत पोतड़ा कुंड के एक कोने में समाने लगा. कुंड में जल की कमी की आपूर्ति दोनों के नैनों के निर्झर करने लगे.

"आज हमारे मध्य कुछ भी गोपनीय नहीं. यह विश्वसनीयता और मित्रता का प्रथम सोपान है." शशि के मुख पर मुस्कान थी. कुमुदिनी अपने स्थानसे उठ कर शशि के वाम अंग आ बैठी.

"इस प्रथम सोपान को पार कर मैं आप के वाम अंग आ बैठी हूँ. विश्वास और मित्रता सहित मैं आपकी पत्नी के स्थान पर आरूढ़ हो गई हूँ. पति-पत्नी के सम्बन्ध का यह प्रथम व अंतिम विश्राम स्थल है. कुमुदिनी के अधरों पर भी स्मित था.

"आज अमावास की अँधेरी रात को हमारे हाथों से प्रज्वलित दीपक प्रकाशमान करेंगे." शशि ने कुमुदिनी के हाथ को प्रेम पूर्वक सहलाते हुए कहा.

"हमारा परस्पर विश्वास, मित्रता, प्रेम और समर्पण हम पति-पत्नी के भविष्य को सदा आलोकित रखेगा." कुमुदिनी ने अपना सर शशि के हाथों पर रख दिया. घर वापिस जाने के लिए इस नव दंपत्ति ने रिक्शा न कर हाथों में हाथ डाले घर के लिए प्रस्थान किया. कुमुदिनी शशि के वाम अंग चल रही थी. आज धर्म और समाज के अतिरिक्त मन से भी पति-पत्नी बन चुके थे.

❁

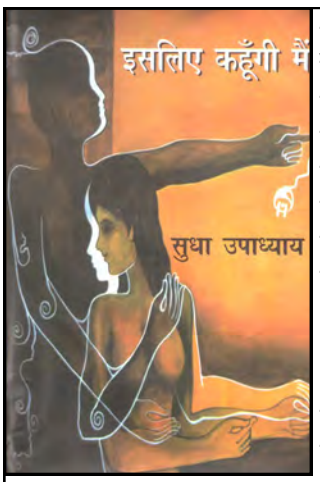

सुधा कवयित्री और कथाकार के रूप में लगभग जानी जा चुकी हैं| वे निरन्तर इस जद्दोजहद में है कि 'देखें'... जो दिखता हुआ भी नहीं दिखता है और निरन्तर सक्रीय है, उन तमाम सक्रियताओं से अलग जो ताकत के निर्मम (अमानवीय) संस्थान में शामिल हैं |

*

इसीलिए मैंने कहा कि सुधा कवि की तरह **देखना** जानती हैं | उनकी अधिकतर कविताओं का स्वभाव ऐसा ही हैं | नितान्त समसामयिकता को महसूसने की एक और कोशिश, **इसलिए कहूंगी मैं** के लिए मेरी अनन्त शुभकामनाएँ |

- नित्यानंद तिवारी

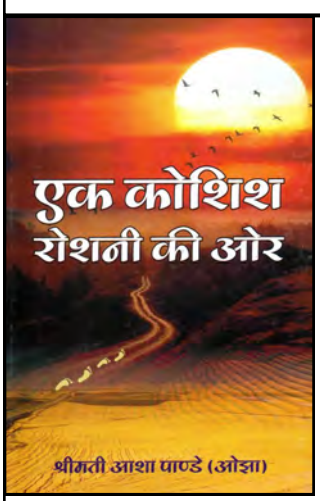

आशा पाण्डे की इन कविताओं को पढाते हुए मैंने यह महसूस किया है कि इनमें जो सादगी, बेबाकी और विषय के प्रति गहरी आसक्ति मिलती है, वह कम लोगों में ही देखने में आई है | मानवीय दृष्टिकोण विशेष रूप से प्रभावित करता है | इसके अतिरिक्त उसे निरंजन निराकार की शक्ति के साथ ठोस प्रेम की जो अभिव्यक्ति हुई है वह विलक्षण है | ऐसी कविताएँ सीधे दिल और दिमाग को छू लेती हैं | इसके लिए कवयित्री बधाई की पात्र हैं | इसके साथ ही मुझे यह पूर्ण विश्वास है कि कवयित्री अभी और भी अच्छी काव्य रचनाएँ देंगी |

- हबीब कैफी

समीक्षा : कहानियों की भीड़ से अलग कहानियाँ

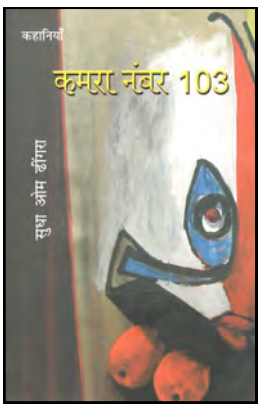

डॉ. सुधा ओम ढींगरा की कहानियाँ अपने पक्ष में बहुत शोर शराबा नहीं करती हैं | ये कहानियाँ बहुत खामोशी के साथ गुज़रती है | किन्तु इस खामोशी में वो आवश्यक हलचल जरूर है जो किसी भी कहानी के लिए जरूरी होती है | ये कहानियाँ विमर्श, वाद और उस प्रकार के सभी दूसरे टोटकों से परे अपनी ही दुनिया बनाती हैं | वो दुनिया जहाँ बहुत छोटी छोटी, रोज़मर्रा के जीवन से उठाई गई घटनाएँ और अपने ही आसपास टहलते हुए पात्र होते हैं | ये दुनिया इसीलिए पाठकों बहुत अपनी सी लगती हैं | और इसी कारण वो इन कहानियों से कहीं न कहीं एक प्रकार का लगाव सा महसूस करने लगता है | इन कहानियों के पात्र जीवन से यथारूप उठाकर कहानी में रख दिये जाते हैं | या यूं कहें कि ये पात्र स्वयं ही टहलते हुए सुधा जी की कहानियों में चले आते हैं | पात्रों की सहजता इन कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता होती है | किन्तु इस सहजता के बावजूद कहानी, सरोकारों के प्रति सजग बनी रहती है | लेखिका की सजगता और पात्रों की सहजता के मेल से जो परिणाम सामने आता है वो पाठक को बाँध लेता है |

समलैंगिकता पर कलम चलाने में पुरुष लेखक ही डरते हैं ऐसे में कहानी आग में गर्मी कम क्यों है लिखना और वो भी पूरी जिम्मेदारी से लिखना | कहानी का शीर्षक पूरी की पूरी कहानी में प्रतिध्वनित होता रहता है | एक रहस्यमय अंधेरी दुनिया के कुछ परदों को उठाने का प्रयास लेखिका ने बहुत सफलता के साथ किया है | रसायनों के खेल के माध्यम से समलैंगिकता और विषमलैंगिकता की अबूझ पहेली का हल तलाशने की कहानी है ये | लेखिका ने कहानी को पूरी तैयारी के साथ लिखा है | कहानी को इस विषय पर लिखी गई श्रेष्ठ कहानियों में रखा जा सकता है |

कमरा नं. 103 बिलकुल अलग प्रकार की कहानी है | टैरी और एमी के अलावा जो तीसरा मूक पात्र मिसेज वर्मा कहानी में उपस्थित हैं, उनकी खामोशी के संवाद लेखिका ने बहुत सुन्दर तरीके से लिखे हैं | ये भी अपने ही प्रकार की एक कहानी है जिसमें एक पात्र भले ही कोमा में है किन्तु संवाद बराबर कर रहा है | उसके संवाद एकालाप की तरह होते हैं | दूसरी तरफ़ नर्स टैरी और एमी के माध्यम से समस्या के मूल तक जाने के प्रयास में कहानी लगी रहती है | ये जो डॉ सामानांतर रूप से चल रही घटनाएँ है ये कहानी को रोचक बनाए रखती है | मिसेज वर्मा कोमा में है और उस कोमा के पीछे के सच को जानने की कोशिश में लगी है टैरी और एमी | कहानी के अंत में मिसेज वर्मा भी इस कोशिश में शामिल होती है, मगर अपने ही तरीके से | कहानी मन को छू जाती है |

डॉ. सुधा ओम ढींगरा की कहानियाँ अपने अनोखे विषयों के लिए चर्चित रहती हैं और इस संग्रह की कहानियों में भी वो विविधता, वो अनोखापन है | नए और अछूते विषयों को अपनी कहानियों के लिए चुनने की लेखिका की ज़िद उनकी कहानियों को भीड़ से अलग बनाती है | और इस संग्रह की कहानियों में भी वो ज़िद लगभग हर कहानी में नज़र आती है|

(संक्षिप्त में)

- पंकज सुबीर

कहानी

फ़रेब

- मीना पाठक

कार्य - गृहिणी , लेखिका / रूचि- संगीत सुनना, फ़िल्में देखना , किताबें पढना , प्राकृतिक स्थलों पर / घूमना पसंद है. / 'अंतर्मन ' ब्लॉग का सफल संचालन , नव्या -पत्रिका में कहानियाँ व कविताएँ प्रकाशित हुई हैं , विभिन्न ई -पत्रिकाओं और ब्लोग्स पर नियमित रचनाएँ प्रकाशित होतीं हैं .

फरवरी का महीना है, दिन के ग्यारह बज चुके हैं पर अभी तक सूर्य देव के दर्शन नही हुए हैं वातावरण कोहरे से घिरा हुआ है ऐसे मे ठण्ड से कंपकपाती हुई सुमित्रा ने अपना गेट खटखटाया, दो मिनट रुक कर फिर से खटखटाते हुए बोली – "बेटा गेट खोलो जल्दी, बहुत ठण्ड है |" थोड़ी देर बाद ही गेट खुल गया सामने उसका छोटा बेटा खड़ा था | सुमित्रा फिर से बोली "अन्दर से जा कर एक लोटा पानी ले आओ |"

"वो क्या करोगी मम्मी" ? बेटे ने सवाल कर दिया |

"ज्यादा सवाल ना करो, जल्दी से ले कर आओ |" सुमित्रा बेटे को डपटते हुए बोली | बेटा भाग कर अन्दर गया और रसोई से लोटे में पानी ले आया | सुमित्रा ने लोटे के पानी से कुल्ली की, हाथ मुंह धोया और गेट के अन्दर आ गयी | जल्दी से नहा कर सारे उतरे हुए कपड़े धो कर छत पर सूखने को डालने के बाद नीचे आ के रजाई दुबक गई | रोने की वजह से उसकी आँखों में जलन हो रही थी फिर भी उसकी आँखों से आँसू निकल पड़े, निकलते क्यों नहीं आज वो अपनी सबसे प्रिय सखी को विदा कर के आ रही थी | उसे याद आ रहा था जब वो पिछली बार उससे मिलने गयी थी तब उसने कितनी सारी बाते उससे की थी, अपने दिल की सारी भड़ास निकालने के बाद उसने मुझसे कहा – "सुमी तेरे बेटे की शादी तय हो गयी ?" मैंने कहा – " नहीं अभी कहीं बात नहीं बनी |"

उसने फिर से कहा –"अपने बेटे की शादी में मुझे बरात मेंले चलेगी ना ?"

मैंने कहा- "कैसी बाते करती है बेबी तेरे बिना मै अपने बेटे की बरात ले के जाऊंगी क्या, तुझे बारात भी चलना है और बेटे की शादी में डांस भी करना है |"

" तू ना बुलाए तो भी मै आऊँगी तू देख लेना |" बोली थी बेबी "अच्छा अब तू सो जा, डा० ने तुझे ज्यादा बोलने के लिए मना किया है |"

किसी तरह उसे उस दिन सुला कर मै घर आ गयी थी और आज सुबह-सुबह ही ये मनहूस खबर आ गयी कि बेबी इस दुनिया में नहीं रही |

बेबी से मेरी दोस्ती करीब 25 साल पुरानी थी | आज भी मुझे याद है जब मै यहाँ नई-नई रहने आई थी तब यहाँ आये दिन किसी न किसी के घर पूजा रखी जाती थी कारण ये था कि यहाँ नये-नये घर बन रहे थे और जो भी रहने के लिए आता अपने घर में पूजा रखता तो उसी में हम दोनों का मिलना होता था | वो मुझे देख कर आकर्षित थी और मै उसे, वो सांवली-सलोनी व बेहद खूबसूरत नाक-नक्श की स्वामिनी थी; हर बात को मजाक बना के हँस देना उसका स्वभाव था | सामने वाले की कोई ना कोई ऐसी कमी निकाल देती थी कि हम दोनों हँसते – हँसते लोट - पोट हो जाते थे, मै उसे डांटती थी कि - "क्या हर किसी की कमी निकालती रहती है" तो उसका जवाब होता "तू हँसती हुयी बहुत अच्छी लगती है इसी लिए जब तू साथ होती है तब मैं तुझे हंसाने का कोई बहाना नहीं छोड़ती,हमेशा मुंह लटकाए रहती है तू |"

हम दोनों थे तो बिल्कुल विपरीत स्वभाव के पर हमारे दिल आपस में जुड़ गये थे | वो हंसमुख और जिंदादिल थी तो मैं गम्भीर और चुप रहने वाली |

धीरे-धीरे हम दोनों की दोस्ती गहराती गयी और हम दोनों एक दूसरे की आदत बन गये थे; अपने दिल की और घर-गृहस्थी की हर बात एक दूसरे से साझा किये बिना हम नहीं रह पाते थे | घर में हमारी दोस्ती सभी को खटकती थी | जब भी वो मेरे घर आती सभी खुसुर-फुसुर करने लगते कि"हो गयी अब दो तीन घंटे की छुट्टी" और सच् में उसके साथ समय कैसे बीत जाता था पता ही नही चलता था | वो जब भी आती मेरे अन्दर ऊर्जा का संचार हो जाता था, वो हँसते-हँसाते मेरे अन्दर नई स्फूर्ती पैदा कर जाती थी; मैंने सपने में भी नहीं सोचा था कि इतनी ज़िंदा दिल स्त्री ऐसे सदमे से इस दुनिया से विदा हो जायेगी | दर्द से मेरा सिर फटा जा रहा था और आँखों में बेहद जलन | रजाई में मेरा शरीर गर्म हो गया था पता नही कब मुझे नींद लग गयी|

गाड़ी का हार्न सुनके मेरी आँख खुल गयी, रजाई से मैंने सिर बाहर निकाला रात के आठ बज चुके थे | मैंने बेटे को हल्के से डांट लगाई "मुझे जगा नही सकते थे"| "पापा ने मना किया था" बेटे ने जवाब दिया, उन्हें मेरी हालत का अंदाजा था इसी लिए वो बाहर से ही खाना ले कर आये थे | अन्दर आते ही पूछा इन्होने "कैसी तबियत है तुम्हारी" इनका इतना पूछना था कि फिर से मेरी आँसू गिरने लगे और मैं सिसकने लगी | ये मेरी पीठ थपका कर मेरे आँसू पोंछते हुए बोले "इस तरह तो तुम्हारी तबियत खराब हो जाएगी जो होना था वो तो हो गया अपने को संभालो | रो-रो कर अपनी क्या हालत कर ली है तुमने,चेहरा देखो अपना सही शीशे में|" मेरी आँखे रोते रोते सूज गयी थी और आस पास लाल घेरा बन गया था | मुझे इन्होने बिस्तर से उतरने नहीं दिया जबरजस्ती से चाय पिलाई और थोड़ा सा खाना खिलाया | थोड़ी देर मै यूँ ही बैठी रही फिर सभी अपने - अपने बिस्तर में लेट गये | मेरी आँखों में नींद नही थी | बेबी नहीं है विश्वास नही हो रहा था जब कि मेरी आँखों के सामने ही उसे सजा संवार के विदा कर दिया गया था ..... आज मुझे उसकी सारी बातें याद आ रही

थी | जब उसे पहली बार दिल का दौरा पड़ा था, मै सुन कर अचम्भे में पड़ गयी थी कि "बेबी को दिल का दौरा ?" ऐसा कैसे हो सकता है वो तो हमेशा खुश रहती है | मैं भागते हुए हस्पताल पहुँची थी | वहाँ जा कर उसे देखा तो उसका चेहरा काला पड़ गया था ऐसा लग रहा था जैसे वर्षों से बीमार हो | मुझे देख कर उसकी आँखों से दो आँसू टपक गये मेरी भी आँखे भीग गई मैंने उसके सिर पर हाथ फेरा उसका हाथ अपने हाथ मे ले कर थोड़ी देर बैठी रही और घर आ गयी थी क्यों कि वहाँ ज्यादा देर बैठने की इजाज़त नही थी, ना वो कुछ बोली थी ना मै कुछ बोल सकी थी| कुछ दिनों बाद मैं उससे मिलने उसके घर गयी थी तब वो कुछ ठीक थी पर अब वो परहेजी खाना, और दवाइयों पर रहने लगी थी | पहले जैसी नही रह गयी थी वो, कमज़ोर भी हो गयी थी, घर का काम करना अब भारी था उसके लिए तो उसने गाँव से अपनी दूर की एक बहन बुला ली थी कुछ दिन के लिए मै भी निश्चिन्त थी कि बेबी अब बड़े आराम से आराम कर रही है | वो चार बहने थीं और बी.ए. कर के घर में ही रहती थी पापा किसान थे तो उसे भी यहाँ रहने में कोई परेशानी नहीं थी| अचानक ही मुझे किसी काम से अपने बेटे के पास दिल्ली जाना पड़ा | मै एक महीने बाद वापस आई तो दूसरे ही दिन उससे मिलने उसके घर पहुँच गयी देखा वो लेटी हुई थी उसकी बहन ने उसे जगाया दीदी देखो, सुमीदीदी आयी हैं और वो अन्दर चली गयी | मुझे देख कर वो थोड़ा खुश हुई मगर फिर से उसका चेहरा मुझे बुझा – बुझा सा लगा | मै बैठ गयी उसके पास और बोली - "अब कैसी हो बेबी "?

"अब तो शायद ही कभी ठीक हो पाऊँ सुमी" डबडबाई हुई आँखों से वो कराहते हुए बोली |

ना जाने क्यों मुझे लगा कि ये अपनी बीमारी से ज्यादा किसी और दर्द से पीड़ित है | मैं बोली "शुभ-शुभ बोलो बेबी, ऐसा क्यों बोलती हो, तुम बहुत जल्दी अच्छी हो जाओगी और हम दोनों फिर से मस्ती करेंगे |" वो हल्के से मुस्कुराई और बोली "ईश्वर करे ऐसा ही हो" और वो फिर से लेट गई | मुझे लगा कि वो मुझसे कुछ छुपा रही है, मैंने पूछा "तू मुझसे कुछ छुपा रही है? ऐसा मुझे क्यों लग रहा है, बोल ना"| "पहले मुझसे वादा कर कि तू किसी को भी नही बताएगी ये सब" बेबी बोली | मैंने कहा – "ठीक है तू कहती है तो नही बताऊँगी किसी को" मुझे क्या पता था कि उसने मुझसे किस बात को ना बताने का वादा ले लिया है| थोड़ा सा ना-नुकुर के बाद उसने जो भी मुझे बताया, मेरे पांव तले ज़मीन खिसक गयी, सन्न रह गयी मै, दिन मे ही तारे नजर आने लगे मुझे | ऐसा भी हो सकता है, मैं सोच भी नहीं सकती थी | भाई साहब तो बहुत अच्छे और गंभीर थे ऐसे कैसे बहक गये | उसने मुझे बताया .....

उस दिन रविवार का दिन था मैने सुबह सारा काम किया सब को नाश्ता दे कर खुद भी नाश्ता किया और अखबार ले कर बैठ गयी पढ़ने के लिए | ऊपर ग्रिल लगना था वो कई दिनों से रखा था, ये उसी को पेंट करने बैठ गये थे | मै इनके पीछे कुर्सी पर बैठ कर अखबार पढ़ने लगी थी | थोड़ी देर बाद ही मुझे लगा कि मेरे दिल के पास से कुछ रेंगता हुआ ऊपर की तरफ़ बढ़ रहा है, और तब मुझे पता ही नही चला कि कब मै कुर्सी से उठ कर अन्दर बेड पर गिर पड़ी | गिरने की आवाज सुन के इन्होने पेंट करते हुए मुझसे पूछा – "क्या हुआ ?" मेरे मुंह से कोई आवाज नही निकली मैं अपना सीना दबाये हुए जल बिन मछली की तरह तड़पती रही | वो दर्द धीरे-धीरे मेरे कंधे की तरफ़ बढ़ रहा था | इन्होने फिर पूछा "क्या हुआ ?" मै फिर कुछ ना बोल सकी, तड़पती रही उसी तरह | तीसरी बार भी जब मेरी आवाज नही आयी तब इन्होने पलट कर अन्दर मुझे तड़पते हुए देखा फिर ये सब छोड़ कर भाग कर मेरे पास आये "क्या हुआ बेबी, क्या हुआ तुम्हे" मेरी आवाज नही निकली मैं पसीने से लतफत थी, मैने हाथ हिला कर हवा करने के लिए इशारा किया ये दौड़ कर हाथ वाला पंखा ले आये और मुझ पर तेजी से हवा करने लगे | मेरा दर्द अब कलाई की तरफ़ बढ़ रहा था और मै अपना कंधा पकड़े बिस्तर पर तड़प रही थी | कलाई के पास पहुँच कर दर्द धीरे-धीरे शांत होने लगा था

तब तक लाइट आ गई थी | थोड़ी देर तक मै कंधा पकड़े - पकड़े बैठी रही, जब दर्द पूरी तरह शांत हो गया तब मैं फिर से बाहर आ के अपनी जगह बैठ गयी और ये फिर से पेंट करने लगे | मैं आश्चर्यचकित थी कि ये क्या हुआ मुझे, ये समझ गये थे पर इधर-उधर की बातों से मुझे बहला रहे थे | इतने मे ही गेट खटका, मैंने उठ कर दरवाजा खोला, मुझे अजीब सी कमजोरी महसूस हुई मै आ के फिर से धम्म से कुर्सी पर बैठ गई | मेरे पड़ोस के ही एक लोग मिलने आये थे मेरी बगल वाली कुर्सी पर वो बैठ गये | मेरे कुछ बोलने से पहले ही वो बोल पड़े "क्या बात है भाभी जी ? आप बीमार थी क्या ?" तब मैंने उनको सारी बात बताई और ये भी बताया की अब मुझे कोई दर्द नही है पर कमजोरी महसूस हो रही है | उन्होंने कहा "आप का चेहरा ऐसा लग रहा है जैसे आप कई दिनों से बीमार हैं इसी लिए मैंने पूछा, दर्द नही है पर आप डा० को जरूर दिखा दीजियेगा इस दर्द को हल्के मे मत लीजिएगा |" सलाह दे कर वो चले गये पर ये मुझे डा० के पास नही ले गये|

अब मुझे कभी कभी सीने मे कुछ दर्द सा महसूस होता था और जब भी दर्द होता था मैं बिस्तर पकड़ लेती थी | ये कभी गैस का दर्द कह कर तो कभी बहुत सोचती हो ये कह कर टाल देते थे | धीरे-धीरे पन्द्रह दिन बीत गये फिर से वही पड़ोसी मुझे देखने आये | मेरी हालत देख कर वो इन पर नाराज हुए "क्या भाई साहब आप ने अभी तक भाभी जी को डा० को नही दिखाया वो "एन्जाइना" भी हो सकता है इतनी लापरवाही ठीक नही, आप तुरंत डा० के पास इन्हें ले कर जाइये | अगले दिन ये मुझे हृदय रोग संस्थान ले गये वहाँ मेरा चेकअप हुआ और डा० ने बताया कि मुझे दिल की बीमारी है अगर ठीक से इलाज नही हुआ तो मैं कुछ दिन की मेहमान थी ये सुन के मेरे पाँव तले ज़मीन खिसक गयी मैं बाहर आ के रोने लगी, अभी तो मेरी सारी गृहस्ती अधूरी थी, मेरा घर अधूरा था, मेरी सारी जिम्मेदारियां यूँ ही पड़ी थी | मै कुछ दिन हास्पिटल मे रह कर घर आ गयी थी और अब मैं अपने शरीर से लाचार हूँ कुछ भी नही कर सकती कमजोरी की वजह से इसी लिए मुझे इस लड़की को बुलाना पड़ा पर आज कल कोई भी अपना नहीं, कह कर बेबी ने एक लम्बी सांस ली और मुझसे पानी का इशारा किया मैंने उठ कर पानी का गिलास उसको पकड़ा दिया पानी पी कर फिर से उसने बताना शुरू किया | मुझे भी सब जानने की उत्सुकता थी सो मैं भी बैठ के सुनने लगी जब की शाम हो चली थी घर आने को देर हो रही थी पर उसकी बात बीच मे ही छोड़ कर मैं कैसे आ सकती थी| उसने फिर से कहना शुरू किया .....

"कुछ दिनों से मैं कुछ अजीब सा महसूस कर रही हूँ सुमी" मैंने पूछा - क्या ? वो बोली 'इनमे' (पति) और अन्दर की तरफ़ इशारा करते हुए 'इसमें' कुछ चल रहा है |

मैं बोली – "तेरा दिमाग खराब हो गया है, पगला गयी है तू, क्या ऊट-पटांग सोचती रहती है, उम्र देखी है दोनों की, चुप कर..... आगे कुछ भी मत बोलना |"

वो बेबस सी रोने लगी मैंने उसे चुप कराया | अचानक से ऐसी बात सुन के मुझे गुस्सा लग गयी थी और मैंने उसे डांट दिया

था, अब मुझे अपनी गलती का एहसास हो रहा था | मैंने बड़े प्यार से पूछा उससे, "ऐसा तू कैसे सोच सकती है, बता मुझे क्या बात है |" मुझे भी लगा की आज तक उसने अपने पति के बारे मे ऐसा कुछ भी नही कहा था आज क्या हो गया | उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और बोली "सुनिये सच् है, मैंने भी ये बात तुझसे यूँ ही नही बोल दी, अपनी आँखों से सब कुछ देखा मैंने | ये दोनों मिल कर मेरा कितना ध्यान रखते हैं; ये सोच कर मै मन ही मन कितना खुश होती थी पर कारण कुछ और ही है | कुछ दिन पहले की बात है मुझे नींद की दवा देने के बाद इन्होने उसे दूसरे कमरे मे आने का इशारा किया, मै अध् बेहोशी मे थी होश आने पर मुझे ये बात याद आई पर मैंने सोचा ये मेरा भ्रम है पर मेरे दिल मे शक का कीड़ा काट गया| उस दिन से मै इन दोनों के हाव-भाव पर नजर रख रही हूँ पर ये लोग मुझे दवा दे कर सुला देते हैं | एक दिन मुझसे रहा नहीं गया तो मै इनका हाथ पकड़ के माता रानी की फोटो के पास ले गयी और अपने सिर पर इनका हाथ रख कर पूछा मैंने कि सच बताओ तुम दोनों मे क्या चल रहा है, अगर तुमने झूठ बोला तो मुझे दुबारा दिल का दौरा पड़े और मै मर जाऊँ, तब इन्होने बड़े प्यार से माँ के सामने मेरी कसम खा के मुझे विश्वास दिलाया था कि ये सब मेरा वहम है ऐसा कुछ भी नही है | मैंने भरोसा कर लिया पर दिल मे कहीं कुछ चुभ रहा था |अभी तीन-चार दिन पहले कि बात है मैंने सोचा आज इन दोनों की सच्चाई जान के रहूँगी उस दिन रात को मुझे दवा दी गयी मैंने सिर दर्द का बहाना कर के कहा कि रख दो अभी थोड़ी देर मे खा लूँगी | मैंने वो दवा छुपा दी और सोने का नाटक करने लगी | वो मेरे पास सोती है और ये दूसरे कमरे मे |" वो चुप हो गई, शायद बोलते-बोलते थक गई थी | मै सांस रोके उसकी बातें ध्यान से सुन रही थी | जैसे-जैसे वो आगे बताती जा रही थी मेरा दिल तेजी से धड़कने लगा था | मैंने पूछा "फिर क्या हुआ ?"

वो बोली – " करीब 12 बजे रात को मेरे कमरे का पर्दा हटा मैंने जरा सी आँख खोल के देखा यही थे | अन्दर आ कर लाइट ऑन कर के इन्होने मुझे देखा मैं सो रही हूँ कि नही मुझे चादर ओढ़ाया और जब इन्हें विश्वास हो गया कि मैं सो रही हूँ तब ये उसका हाथ पकड़ के दूसरे कमरे मे ले गये | मैं गुस्से और अपमान से थर-थर काँप रही थी पर इतनी हिम्मत नही हुई मेरी कि मै उठ कर दूसरे कमरे मे जा कर देखूँ इन दोनों को | इन दोनों की हँसने की आवाज मेरे कानो मे गरम सीसे की तरह पड़ रही थी | मुझे इनकी झूठी कसम भी याद आ रही थी जो इन्होंने मेरे सिर पर हाथ रख के माँ के सामने खाई थी | गुस्से और कमजोरी के कारण मैं बिना दवा के ही बेहोश हो गयी | सुबह आँख खुली तो लगा कि कोई बुरा सपना देख लिया है मैंने | अपनी आखों पर विश्वास नही हो रहा था सुमी|"और वो सिसक पड़ी |

मैं उसके सिर पर हाथ फेरने लगी, मेरे मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला मैं सोचने लगी भाई साहब करीब चालीस के होंगे पर देखने मे वो पैंतीस के ऊपर नही लगते हैं और ये लड़की भी तो अठ्ठाईस से कम की नही है तो क्या जो बेबी कह रही है वो सब ..... मेरा दिमाग चकरा गया | वो अब भी सिसक रही थी, मैंने कहा "उसे भेज क्यों नही देती यहाँ से और किसी को बताती क्यों नही ये सब बात |"

"जब मुझे ही विश्वास नही हो रहा इस बात पर तो कोई भी विश्वास नही करेगा मुझ पर, सब मुझे झूठा साबित कर देंगे और इसे अगर भेज दूँ तो घर कौन सम्भालेगा | मैं बिस्तर पर हूँ, इनकी नौकरी है, बेटे का स्कूल है सब कौन देखेगा | अब तो मैं खुद को तसल्ली दे रही हूँ कि अगर मैं मर गयी तो कम से कम ये मेरा घर तो सम्भाल ही लेगी इसी लिए अब मैंने इन दोनों पर नजर रखना भी बंद कर दिया है, माँ के हवाले कर दिया है सब कुछ, जैसी उसकी मर्जी |" बोल कर बेबी ने मेरी तरफ पीठ कर ली | मैं समझ गयी कि अब वो कुछ नही बोलेगी | थोड़ी देर मैं वहीं बैठ कर उसके बालों मे उंगुली करती रही और सोचती रही कि " कितना हँसता खेलता परिवार था बेबी का ना जाने किसकी नजर लग गयी | मैं क्या करूँ उसके लिए किसी और को ये सब बताना भी उचित नही था जब बेबी ही नही बता रही थी तो मैं कैसे बताती | इसने तो परिस्थितियों के हवाले कर दिया है खुद को मैं क्या करूँ इसके लिए | मै सोच ही रही थी कि इतने मे बाइक रूकने की आवाज आई | मैं समझ गयी कि भाई साहब आ, गये मै नफरत से भर गयी, मैंने बेबी के बालों से अपना हाथ हटाया और चुपचाप उठ के निकल गयी उसके घर से, बेबी भी शायद सो गयी थी | एक तो दिल की बिमारी ऊपर से दिल पर इतना बड़ा बोझ ले कर वो कब तक ज़िंदा रहेगी | यही सब सोचते हुए मैं भारी कदमों से अपने घर आ गयी थी |

इस बात को करीब दस दिन हो गये थे | इधर ठण्ड बहुत पड़ रही थी जाड़ों मे दिन छोटे और काम ज्यादा हो जाता है इसी वजह से इधर मैं बेबी को देखने नहीं जा पाई थी और आज सुबह-सुबह ही मेरी एक दूसरी फ्रेंड का फोन आ गया उसने बताया कि "कल रात बेबी को अटैक पड़ा और हस्पताल ले जाते हुए रास्ते मे ही उसके प्राण निकल गये |" मैं उसी समय उठ कर उसके घर भागती चली गयी | वहाँ जा कर मैंने देखा कि वो ज़मीन पर शांत लेटी है कोई हलचल नही, सभी दुःख - दर्द से छुटकारा मिल गया था उसे | मैं उसका हाथ पकड़ के फूट-फूट कर रो पड़ी | मेरी दूसरी सखियों ने मुझे सम्भाला फिर उसे नहला धुला के लाल रंग की साड़ी पहनाई गई, उसका पूरा श्रृंगार किया गया | उसका चश्मा ला कर उसे पहना दिया गया फिर भाई साहब को पकड़ कर लाया गया उन्होंने उसकी मांग भरी मुझे लगा की उनका मुंह नोंच लूँ पर अपने गुस्से पर काबू रखा मैंने | उनकी अच्छी खासी छवि थी समाज मे कोई भी मुझपे विश्वास नही करता | बेबी की मांग भरने के बाद वो भी उसके चेहरे पर अपना चेहरा रख के फूट फूट कर रो पड़े थे वहाँ उपस्थित सभी लोगों की आँखों मे आँसू थे | इतने दिनों की बीमार बेबी आज कितनी सुन्दर लग रही थी, लग ही नहीं रहा था कि वो बीमार थी , ऐसा लग रहा था कि तैयार हो के सो गयी है बेबी | फिर उसे लाल चुनरी ओढा दी गयी सिर से और वो पति के कंधे पर चढ़ के विदा हो गयी इस दुनिया से | अपने साथ अपने पति की बेवफाई भी ले गयी थी, समाज मे उसका सम्मान बचा गयी थी बेबी पर खुद उसकी बेवफाई का दर्द सह नही पायी और विदा हो गयी इस दुनिया से | मेरी हिचकियों की आवाज से ये जाग गये थे | मेरे पास आ कर बोले "तुम सोयी नही ? कब तक रोती रहोगी संभालो खुद को, अब तुम्हारी सखी वापस तो नही आ सकती, हिम्मत से काम लो तुम्हारी तबियत खराब हो गई तो क्या होगा |" इन्होने समझा बुझा के मुझे चुप कराया और रजाई ओढा के सुला दिया |

समय बीतने लगा, जब भी बेबी की याद आती दिल दर्द से भर जाता और आँखों से आँसू निकल पड़ता पर कर क्या सकती थी मैं, ईश्वर के आगे किसकी चलती है | धीरे – धीरे समय बीतता रहा और साल निकल गया |

आज फ़रवरी की वही तारीख थी जब बेबी इस दुनिया को छोड़ गयी थी | आज सुबह से ही मेरे आँसू नही रुक रहें थे |

बेबी के बाद मैंने कभी भी उसके घर का रुख नही किया था एक तो बेबी के बिना मैं उस घर की कल्पना भी नही कर सकती थी दूसरा मुझे उसके पति से नफरत हो गयी थी पर आज तक मैंने वो बात किसी को भी नही बताई थी | घर का सारा काम निपटा कर मैं अपनी दूसरी सखी, जो उसी के मुहल्ले मे रहती थी उसके घर के लिए निकल पड़ी | वो भी उदास थी हम दोनों थोड़ी देर बेबी को याद कर के आँसू बहते रहे फिर मैंने ही उससे पूछा "भाई साहब (बेबी के पति) आज कल कहाँ हैं | उसने आँसू पोंछते हुए आश्चर्य से कहा "अरे !! तुझे नही पता क्या ?" मै चौंक कर बोली " नही तो ..... क्यों क्या हुआ ?"

"अभी पिछले महीने ही तो मंदिर मे उनकी शादी कराई गयी है, बेचारे कितना रो रहे थे, बिल्कुल भी तैयार नही थे शादी के लिए पर सभी रिश्तेदारों ने समझा बुझा के उनकी शादी कराई उनकी | लड़की भी तो बेबी की बहन लगती थी उसके बेटे को अपने बेटे की तरह रखती है, बेबी की गृहस्ती अच्छे से सम्भाल रखी है उसने | अच्छा ही हुआ नही तो अभी भाई साहब की उम्र ही कितनी थी आगे जा कर कही कुछ ऊँच – नीच हो जाता भाई साहब से तो बेबी का घर बिगड़ जाता उससे तो अच्छा हुआ कि सबने कह सुन के उनकी शादी करा दी |"

वो बोले जा रही थी और मैं सोच रही थी कि "कितना बड़ा फरेबी है बेबी का पति उसके इसी फरेब की वजह से बेबी इस दुनिया से असमय ही चली गयी और ये कितना शरीफ़ और सज्जन बन के बैठा है |" मेरा मन खराब हो गया ये सब सुन कर| मैं उसके घर से निकल पड़ी और मन ही मन निश्चय किया कि अब कभी वो बेबी के मुहल्ले मे भी कदम नही रखेगी, बेबी उसके दिल में है और हमेशा रहेगी |

***

यह एक अविवादित सत्य है कि हमारे लिए साहित्य और कलाएं आज भी अपरिहार्य हैं और हमेशा अपरिहार्य रहेंगी| हम चाहें कितने भी भौतिकवादी और अर्थवादी हो जाएं पर हम अपने अंतर्ज़गत से कभी अनासक्त नहीं हो सकते | आज भी चाहें बारिश में भीगने की प्रबल ईच्छा हो या बारिश के बाद ज़मीं से उठाने वाली मिट्टी की सोंधी महक या और भी ना जाने कितना ही कुछ ऐसा है जिससे आकर्षित हुए बिना हम कभी नहीं रह सकते | वैविध्यपूर्ण बहुरंगी संकृति हमारे देश भारत की अपूर्व धरोहर है | यही हमें हमारे अद्वितीय होने का अहसास दिलाती है और प्रतिष्ठा भी | वैश्वीकरण के इस दंगल में अपने साहित्य, कला और संस्कृति को बचाए रखना हमारा परम कर्तव्य हैं | पश्चिम की बनाई सपाट और मशीनी व्यवस्था में मनुष्य और मनुष्यता, दोनों ही कितने दिन तक जीवित रह सकते हैं?

- सारिका मुकेश

विश्वगाथा

(त्रैमासिक मुद्रित पत्रिका)

वार्षिक-आजीवन-संरक्षक सदस्यता

❁

वार्षिक सदस्यता : 200/- रुपये

5-वर्ष : 1000/- रुपये

(डाक खर्च सहित)

इस अंक का मूल्य 30/- रुपये

❁

संरक्षक सदस्यता

Rs. 25,000/-

❁

'नव्या पब्लिकेशन' के नाम से ही डिमांड ड्राफ्ट

या

AT PAAR का चेक से ही शुल्क भेजें

Online payment :

ICICI BANK

BRANCH :

0000453–SURENDRANAGAR—Gujarat

CUSTOMER ID : 528924887

A/c. NO. 045305500131

Internet Banking Corporate ID : 528924887

❁

नव्या पब्लिकेशन

C/o. पंकज त्रिवेदी

गोकुलपार्क सोसायटी, 80 फीट रोड,

सुरेंद्रनगर– 363 002 गुजरात

Mobile : 09662514007 - 09409270663

❁

vishwagatha01@gmail.com

कहानी

चलती साँसों का सिलसिला

- समीर लाल 'समीर'

एजेक्स, ओन्टारियो, कनाडा ब्लॉग: http://udantashtari.blogspot.ca/

अपनी लम्बी यॉर्क, यू के की यात्रा को दौरान जब अपनी नई उपन्यास पर काम कर रहा था तब अक्सर ही घर के सामने बालकनी में, कभी सुबह की चाय का आनन्द लेने तो कभी देर शाम स्कॉच के कुछ घूँट भरने आ बैठता. विचारों की आवा जाही के बीच जब जब भी मेरी नजर घर के सामने वाले मकान की बालकनी पर जाती तब तब वहाँ बैठे एक बुजुर्ग को देखा करता. उसके चेहरे पर उभर आई झुर्रियाँ उसकी ८० पार की उम्र का अंदाजा बखूबी देती. कुर्सी के बाजू में उसे चलने को सहारा देने पूर्ण सजगता से तैनात तीन पाँव वाली छड़ी मगर मुझे लगता है कि उसे इन्तजार रहता है उन दो पाँव से चल कर दूर हो चुके उस सहारे का जिसे उसने अपने बुढ़ापे का सहारा जान बड़े जतन से पाल पोस कर बड़ा किया था. फिर जैसे ही वह इस काबिल हुआ कि उसके दो पैर उसका संपूर्ण भार वहन कर सकें, तब से वो इस घर से ऐसा निकला कि इस बुजुर्ग के हिस्से में बच रहा बस एक इन्तजार- न जाने विश्व के कितने ही बुजुर्गों की बही में दर्ज है इन्तजार की यही प्रविष्टी. शायद कभी न खत्म होने वाले की इन्तजार की इबारत- ये प्रविष्टी. बार बार अपने को दोहराती- ये प्रविष्टी.

बालकनी में बैठे उसकी नजर हर वक्त उसके घर की तरफ आती शहर की मुख्य सड़क पर ही होती. साथ उसकी पत्नी, शायद उसी की उम्र की, भी रहती है उसी घर में. वो ही सारा कुछ काम संभालते दिखती है. कुछ कुछ घंटों में चाय बना कर ले आती, कभी सैण्डविच तो कभी कुछ और. दोनों आजू बाजू में बैठकर चाय पीते, खाना खाते लेकिन आपस मे बात बहुत थोड़ी सी ही करते. शायद दोनों को ही चुप रहने की आदत हो गई थी या इतने साल के साथ के बाद अकेले में एक दूसरे से कहने सुनने के लिए कुछ बचा ही न हो या फिर बिना बोले एक दूसरे क जरुरत और सोच को समझ जाने की महारत हासिल हो चली हो. कौन जाने!! कुछ नया तो होता नहीं था. वही सुबह उठना, दिन भर बालकनी में बिताना और ज्यादा से ज्यादा फोन पर ग्रासरी वाले को सामान पहुँचाने के लिए कह देना. पत्नी बीच बीच में उठकर गमलों में पानी डाल देती. उनमें भी जिसमें अब कोई पौधा नहीं बचा था. जाने क्या सोच कर वो उसमें पानी डालती थी. शायद वैसे ही, जैसे जानते हुए भी कि अब बेटा अपनी दुनिया में मगन है, वो कभी नहीं आयेगा- फिर भी निगाह घर की ओर आने वाली सड़क पर उसकी राह तकती- शायद कभी कोई चमत्कार हो जाये.

उनके घर से थोड़ा दूर सड़क पार उसकी पत्नी की कोई सहेली भी रहती थी. नितांत अकेली. कई महिनों में दो या तीन बार इसको उस सहेली के घर जाते देखा और शायद एक बार उसे इनके घर आते. जिस रोज वो उसके यहाँ जाती या वो इनके यहाँ आती, उस शाम पति पत्नी आपस में काफी बात करते दिखते. शायद कुछ नया कहने को होता वरना तो सूरज वैसे ही ऊगता और वैसे ही डूबता जैसे कि हर रोज.

अक्सर मेरी नजर अपनी बालकनी से उस बुजुर्ग से टकरा जाती. बस, एक दूसरे को देख हम हाथ हिला देते. इतने दिनों में एक दूसरे को देखते हुए, हाथ हिलाते हुए हुई हमारी जान पहचान के बारे में शायद उसने अपनी पत्नी को भी बता दिया था. अब वो भी जब बालकनी में होती तो हाथ हिला देती. हमारे बीच एक नजरों का रिश्ता सा स्थापित हो गया था. बिना शब्दों के कहे सुने हुई एक जान पहचान. मैं अक्सर ही अकेले में उन दोनों के बारे में सोचा करता. सोचता कि ये बालकनी में बैठे आखिर क्या सोचते होंगे? क्या सोच कर रात सोने जाते होंगे और क्या सोच कर एक नया दिन शुरु करते होंगे?

मुझे तो यह सब अपनी समझ के परे लगता. कभी कभी सहम भी जाता, जब ख्याल में आता कि यदि इस महिला को इस बुजुर्ग के पहले दुनिया से जाना पड़ा तो इस बुजुर्ग का क्या होगा? मैने तो उसे सिर्फ छड़ी टेककर बाथरुम जाते और रात को अपने बिस्तर तक जाने के सिवाय और कुछ भी करते नहीं देखा. यहाँ तक की ग्रासरी लाने का फोन भी वही महिला करती. तरह तरह के ख्याल आते. मैं सहमता, घबराता, खुद की स्थितियाँ सोचता, परिवार के पीछे छूटे बुजुर्गों का ख्याल आ घेरता, फिर सहम जाता और फिर कुछ पलों में भूल कर सहज हो जाता हूँ. यह भूल कर सहज हो जाने का सिलसिला ही तो जिन्दा रखता है हर हालात में हमें.

मैं भरी दुपहरी अपने बंद अँधेरे कमरे में ए सी को अपनी पूरी क्षमता पर चलाये चार्ल्स डी ब्रोवर की पुस्तक 'फिफ्टी ईयर्स बिलो ज़ीरो' को पढ़ता आर्कटिक अलास्का की ठंड की ठिठुरन अहसासता भूल ही जाता हूँ कि बाहर सूरज अपनी तपिश के तांडव से न जाने कितने राहगीरों को हालाकान किये हुए है. कितना छोटा आसमान बना लिया है हमने अपना. कितनी क्षणभंगुर हो चली है हमारी संवेदनशीलता भी. बहुत ठहरी तो एक आँसू के ढुलकने तक. आह! एक अजब अहसास! एक सिरहन- ठिठुरन से भरी- जैसे उतर गई हो जेहन में मेरे.

समय के पंख ऐसे कि उन्हें कतरना भी अपने बस में नहीं तो उड़ चला. अब कनाडा वापसी को दो तीन दिन बचे. उस शाम यह बहाना भी अच्छा था कि अब तो वापस जाना है और कुछ मौसम भी ऐसा कि वहीं बालकनी में बैठे बैठे नियमित से एक ज्यादा ही पैग हो गया स्कॉच का. शराब पीकर यूँ भी आदमी

ज्यादा संवेदनशील हो जाता है और उस पर से एक्स्ट्रा पी कर तो अल्ट्रा संवेदनशील. कुछ शराब का सुरुर और कुछ कवि होने की वजह से स्वभाविक भावुकता, एकाएक उन बुजुर्गों की हालत पर अपने दिल को भर बैठा याने कि दिल भर आया उनके हालातों पर. सोचा, आज जा कर मिल ही लूँ और इसी बहाने बता भी आऊँगा कि दो दिन में वापस कनाडा जा रहा हूँ. एक बार को थोड़ा सा अनजान से घर में जाने की असहजता महसूस हुई किन्तु शराब ने मदद की और याद दिलाया कि कदम अनजान हैं तो क्या- नज़रों की तो पहचान है और मैं अपनी सीढ़ी से उतर कर उनकी सीढ़ी चढ़ते हुए उनकी बालकनी में जा पहुँचा.

वो मुझे देखकर जर्मन में हैलो बोले. जर्मन मुझे आती नहीं मगर एक हृदय के भाव दूसरे के हृदय के भाव की भाषा तो यूँ ही समझ लेते हैं,तो मैने उन्हें अंग्रेजी में हैलो कहा. हिन्दी में भी कहता तो शायद उनके लिए वही बात होती क्यूँकि अंग्रेजी उस बुजुर्ग को आती नहीं थी. इशारे से वो समझे और इशारे से ही मैं समझा. फिर उनका इशारा पा कर उनके बाजू वाली कुर्सी पर मैं बैठ गया. उनकी गहरी आँखों में झांका. एकदम सुनसान, वीरान. मैने उनके हाथ पर अपना हाथ रखा. भावों ने भावों से बात की. शायद एक लम्बे अन्तराल के बाद किसी तीसरे व्यक्ति का स्पर्श पा दबे भावों के सब्र का बाँध टूटने की कागर पर आ गया हो. उनकी आँखें नम हो आईं. मैं तो यूँ भी अल्ट्रा संवेदनशील अवस्था में था. अति संवेदनशीलता में शराब आँख से आँसू बनकर टप टप टपकने लगी. बुजुर्ग भी रो दिये और मेरा जब पूरा एक्स्ट्रा पैग टपक गया, तब मैं उठा. उन्हें हाथ पर थपकी दे ढाढस बँधाई और उन्हें नमस्ते कर बिना उनकी तरफ देखे सीढ़ी उतर कर लौट आया. बिन देखे अहसासा कि ऐसे वक्त में उनकी मदद को उनके पास उनके कांधे पर भरोसे का एक स्पर्श प्रदान करती आ खड़ी हुई वह महिला भी मुझे विदा करते हुए हाथ हिला रही है....एक धन्यवाद के भाव के साथ कि किसी ने तो उसके पति को समझा एक अरसे के अंतराल में एक छोट से अंतराल के लिए ही सही.

सुबह उठकर जब उनकी बालकनी पर नजर पड़ी तो वह बुजुर्ग हाथ हिलाते नजर आये- साथ नज़र आई उनकी जीवनसंगिनी. एक बार फिर मेरी आँख नम हुई यह सोचकर कि कल से यह मेरा भी इन्तजार करेंगे हाथ हिलाने को. आँख में आई नमी ने अहसास करा दिया कि कल जो बहा था वो शराब नहीं थी. दिल की किसी कोने से कोई टीस उठी थी उस एकाकीपन और नीरसता को देख, जो आज न जाने उस जैसे कितने बुजुर्गों की साथी है....

सुबह जागते
चलती सांसो का सिलसिला
दिलाता है याद मुझे..
फिर एक दिन
फिर एक शाम
और
फिर एक रात
बाकी है अभी...

***

पंकज त्रिवेदी को हिन्दी साहित्य अकादमी द्वितीय सम्मान

पुस्तक " झरोखा" के लिए सम्मान

गुजरात राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी ने 'विश्वगाथा' त्रैमासिक हिंदी पत्रिका के संपादक श्री पंकज त्रिवेदी की पुस्तक **'झरोखा'** को पुरस्कार के लिए चुना है। 2010 में प्रकाशित पंकज त्रिवेदी की पुस्तक निबंध संग्रह है। गुजरात राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी ने द्वितीय सम्मान की घोषणा की है। यह सम्मान पंकज त्रिवेदी को 3, अक्टूबर-2013 को आयोजित एक समारोह में दिया जायेगा। **पुस्तक प्राप्ति स्थान : हिंद-युग्म** 1, जिया सराय, हौज खास, नई दिल्ली– 16 M. 9873734046

❁

पंकज त्रिवेदी एक जाना माना नाम, गुजरात में अपनी भाषा के साथ एक खास मुकाम पाता नाम | पर ज़िंदगी जब हर दिन, हर पल नये गीत सुनाती है तो भाषा के द्वार खोलकर व्यक्ति स्वत: उस भाषा की ओर अग्रसर होता है, जिसमें पूरा देश बंधा होता है | यही द्वार खोला है पंकज जी ने और जीवन के प्रति पल बजते भावों को, संभावित उम्मीदों को हमारे आगे रखा है | झरोखे से हमारी आम ज़िंदगी, आम चाहतें, आम विशेषताएँ झाँकती हैं, जिनसे मुखातिब होते लगता है - यह चेहरा कितना अपना है, और इस चेहरे की बारीकियों से हम कम अवगत थे |

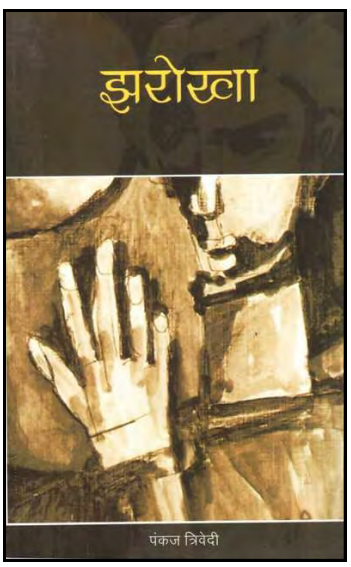

हर पहलू पर लेखक ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि डाली है और एक विस्तार दिया है | "चाय पीने का मेरा भी मन है" एक मन ही नहीं 'वसुधैव कुटुम्बकम' का अदभुत मंत्र है, कश्मीर से कन्याकुमारी तक का स्वाद है | आम ज़िंदगी को करीने से सँवारते हुए लेखक की कलम ने एक चाहतों की पगडंडी बनाई है, जहाँ चलना सबकी चाहत है | चाय, पान से अलग मुंबई के बारे में, तितलियों के देश के विषय में, प्रेम से परमात्मा तक का सफर, ग्रीष्म की छाँव का विस्तृत अवलोकन, पलानेघर से वृद्धाश्रम तक का दर्द .... हर पृष्ठ, हर भाव हृदय के हस्ताक्षर हैं |

'झरोखा' अपने आप में एक हितोपदेश है, जो हमें हर महत्वपूर्ण पहलुओं से अवगत कराता है | मेरी बातों की सच्चाई का आभास आप एक-एक रचना से गुज़रते हुए पाएँगे |

- रश्मि प्रभा

शख्सियत

अलख आराधक श्री बाबू राणपूरा 'पू. दयालु'

- पंकज त्रिवेदी

अहो ! प्रकट दिव्य चैतन्य यही स्वरूपा, झलमल खलक दिसे मन रजत स्वरूपा
बाजत है ढोल मंजीरे उछंग ये जलधारा, बाबल नाचे गावें दयालु बन जो ये धीरा

लोकसाहित्य में सुर-शब्द, ताल-नाद और नर्तन के द्वारा गाने की कला; लोकसाहित्य के शास्त्रीय संशोधन तथा साहित्य का समन्वय एक ही व्यक्ति में होना असंभव है| क्वचित असंभव में से संभव होना ही ईश्वर की कृपा है| प्रारब्ध और पुरुषार्थ श्रद्धापूर्वक कठिन साधना के द्वारा किसी कलाकार को कला के द्वारा ही साध्य बनाता है | ऐसे कलाकार के लिए शहर, राज्य या राष्ट्र को भी गौरव की अनुभूति हों तो क्या आश्चर्य? धर्म और कर्म की नींव पर रचे हुए ईस देश में गुजरात के सुरेंद्रनगर यानि झालावाड की धरती पर आना सौभाग्य होगा|

सुरेंद्रनगर में वादीपरा चौक, पंचमुखी हनुमान मंदिर पर श्री बाबूभाई राणपुरा को मिलने की जगह| मानवता के मेले में समष्टि भाव से रहने वाले इस बाबू के हृदय के तार झनझना उठे और उनमें से एक नया ही स्वरुप हमें मिले वह है- बाबू की आत्मा| उन्होंने साहित्य के अलख को पहचानकर अपने कृतत्व की इतनी आंच दी कि उनमें से से प्रकट होने लगे लगे- पुरुष और प्रकृति शिव और शिवा| भगवान शिव सृष्टि के संहारक, परम पुरुष है| उनकी शक्ति उमा, प्रकृति है| उनका मिलन अर्धनारीश्वर के रूप में प्रकट होता है और चरमसीमा पर शुरू होता है तांडव नृत्य ! शिव यानि महाकाल ! इस महाकाल का नृत्य यानि रौद्र स्वरूप| ऐसे रौद्र-रस के गायक जब अपने गले से रटकर पहाड़ी आवाज़ में सामवेद के स्वर से गाने लगे तब शेषनाग के माथे पर रही धरती भी डोलने लगे|

जन्म के बाद डेढ़ वर्ष की उम्र में माता ने फ़कीरी धारण कर ली और बाबू ने उस फ़कीरी को ही फंका बनाकर भीतर की गहराई में गाड़ दी और उसमें से उभर आया गेरुआ रंग| उस रंग में रंगा हुआ यह जीव | काठियावाड़ (क्षेत्र) में अहीर-चारणों, मवेशियों के नेस में तथा साधु-संतों के साथ बारह वर्ष की उम्र तक परवरिश पाता रहा| फिर झालावाड (सुरेंद्रनगर जिला) की धरती पर माँ के आशीर्वाद के साथ जीवन संघर्ष शुरू किया|

जूनागढ़ में गुणभद्र विजयजी महाराज और मलु पटेल 'मस्ताना' और कई कलाकारों के साथ गेरुए रंग को चाहने लगा| लोकगायक बाबू राणपुरा ने झालावाड में भजन, दोहे, छंद और लोक कहानियों के द्वारा सुर, शब्द और लय से भिगो दिया| अपनी नव वर्ष की आयु में नाटको से शुरुआत करने वाले इस कलाकार ने संवाद, अभिनय भी किया| फिर फिल्म क्षेत्र में आये| पहली गुजराती फिल्म "अलबेली नार" में पटकथा और संवाद लिखे| "देवरों देवल" में गाने के बाद आगे बढ़ते गए| सुप्रसिद्ध फिल्म निर्माता केतन मेहता के साथ "तरणेतर" फिल्म में अपनी आवाज़ दी| डोक्युमेंटरी अंग्रेजी फिल्म "रबरी ऑफ़ कच्छ" अंतरराष्ट्रीय स्तर पर छा गई | उसके बाद "म्यूजिशियन ऑफ़ गुजरात" में सूत्रधार, लेखक और गायक की ज़िम्मेदारी बखूबी निभाई| फिल्म "मिर्च मसाला" में स्व. स्मिता पाटील, नसीरुद्दीन शाह, राज बब्बर, सुरेश ओबेरॉय जैसे कलाकारों के संग एक चारण बनकर छोटा मगर महत्त्वपूर्ण रोल किया | उनके संवाद पर सेंसर बोर्ड की कैंची खूब चली| आर्ट फिल्मों के चाहनेवालों ने इस फिल्म की बड़ी सराहना की थी| उसी फिल्म के गाने लिखे, गाये और सहायक संगीतकार भी थे|

फिर अरुणा राजे की फिल्म "रिहाई" में गाने लिखे| जिसमें विनोद खन्ना और हेमामालिनी जैसे बड़े स्टार थे | फिर परेश मेहता की "चित्कार" फिल्म के गाने-संवाद लिखे | बाबू राणपुरा तो परंपरा के कलाकार है | लोक संस्कृति और गेरुए रंग तो उनकी नस-नस में बहते हैं| 1987 में "फेस्टीवल ऑफ़ इंडिया इन यु.एस. एस.आर." में भारत के जितने भी कलाकारों को निमंत्रण मिला था उसमें बाबु राणपुरा भी थे | जब पेरिस के एफिल टावर से बाबू राणपुरा ने किसी भी वाद्य की सहायता के बगैर शिव-शक्ति के अर्धनारीश्वर स्वरूप को रौद्र तांडवनृत्य का वर्णन किया था तो सारी दुनिया में लाईव देख रहे लोग अभिभूत हो गए थे| तांडवनृत्य की इस पेशकश के दौरान पेरिस की पुलिस ने आयोजकों से कहना पडा कि इस गाने को रोकना होगा, वर्ना सुरक्षाकर्मी आपस में लड़ेंगे| इतना जुनून पैदा हो गया था | तांडवनृत्य की पेशकश हो और सैनिको में जोश न आए तो वह पेशकश ही क्या और कलाकार भी कैसे?

शाम के सुरों में इस पेशकश के दौरान फ्रांस और रशिया में सभी कार्यक्रमों को रद्द करके सिर्फ इसी का जीवंत प्रसारण हो रहा था | 1991 में ब्रिटेन सरकार ने वेल्स स्टेट की एटलान्टिक कोलेज में क्वीन एलिज़ाबेथ होल में "माटी नी महक" (स्मेल ऑफ़ अर्थ) पर डेढ़ घंटे तक व्याख्यान दिया| जिसमें यूरोप, अफ्रीका, फ्रांस, जर्मन, नोर्वे, स्विटज़रलैंड

और ब्राज़ील जैसे देशों के पारंपरिक लोक कलाकारों और संशोधकों की उपस्थिति थी |

1992 में केतन मेहता ने "सरदार" फिल्म बनाई थी | उसमें गीतकार, गायक और अभिनय भी किया | यूरोप की जानी-मानी विल्सन लायब्रेरी में "हरि रस नी हेली" विषय पर साढ़े तीन घंटे तक व्याख्यान दिया और उसका रिकोर्डिंग आज भी वहां मौजूद है | बाबू राणपुरा की आदम कद चार तस्वीरें उस लायब्रेरी की शोभा बढ़ा रही हैं| भारत के वेस्ट ज़ोन के सांस्कृतिक सलाहकार भी रह चुके हैं | पिछले कईं वर्षों से कईं विश्व- विद्यालयों में वह लोकसाहित्य, नृत्य, संगीत, नाट्य जैसे विषयों पर भाषण देते हैं | "गुजरात राज्य संगीत, नृत्य, नाट्य एकेडेमी" के द्वारा उन्हें गौरव पुरस्कार से सम्मानित किया गया है | उन्होंने आम आदमी के बीच में रहकर उनके सुख-दुःख को जाना है और लोगों के बीच में से जो भी पाया, उसी परम्परा को आगे बढाते रहें है | बचपन के वर्ष साधु-संतो के बीच बिताने वाले यह कलाकार आज भी गिरनारी फ़कीरी में जीते हैं |

❋

गुजरात के लोक साहित्यकार श्री बाबू राणपूरा को अब उनके चाहने वाले 'महा मारगी पू.दयालु' के नाम से संबोधित करते हैं | भगवान शिव की आराधना में लीन 'महा मारगी पू.दयालु' के जीवन और आध्यात्मिक यात्रा के संदर्भ में गुजरात के सुरेंद्रनगर में दिनांक :7-8 September 2013 को उनके उपसकों के (गतागंगा परिवार) द्वारा एक परिसंवाद का आयोजन हुआ | जिसमें पूरे गुजरात के विविध शहरों से भावकों की उपस्थिति बता रही थी कि 'महा मारगी पू.दयालु' सच्चे अर्थ में एक साक्षरएवं संत परंपरा के ओलिया फ़कीर है |

कार्यक्रम में निम्न विषयों पर विविध वक्ताओं ने अपने विचार व्यक्त किए| मगर मुझे – कवि बाबल,लोकसाहित्यकार बाबू राणपूरा और अब 'महा मारगी पू.दयालु' के साथ मेरे पिछले 41-वर्षों संस्मरण और समसंवेदना पर सेमिनार के उदघाटक व्याख्यानकार के रूप में जो महत्वपूर्ण जिम्मेदारी के लायक समझा गया वोही मेरे जीवन की उपलब्धि है | विषयों के बंधन वैसे भी मुझे रास नहीं आतें | अन्य सभी वक्ताओं को पू. दयालु के पुस्तकों पर विवेचना करनी थी |

श्री बाबू राणपूरा के संस्मरण-समसंवेदना – श्री पंकज त्रिवेदी (संपादक-विश्वगाथा-त्रैमासिक) सुरेंद्रनगर

सदाकाल मारग मारग – श्री जशुभाई सोनी (भूज-कच्छ) और श्री विजय ठक्कर (प्राध्यापक)

शिवमत – श्री जशुभाई सोनी (भूज-कच्छ)

अवतारी अलागारी अवधूत श्री बाबू राणपूरा – डॉ. मोतीभाई पटेल (गुजरात के जानेमाने शिक्षाविद)

श्री बाबू राणपूराकी कविताओं का रसदर्शन –डॉ. नरेन्द्र रावल

मर्यो होय इज मारगी (जो मरा हों वोही मारगी) – डॉ. बलवंत व्यास (प्राध्यापक) | समग्र कार्यक्रम के आयोजन-प्रणेता 'महा मारगी पू.दयालु' के परम उपासक **श्री महेंद्र शुक्ल** एवं परिवार |

यात्रा वृतांत

एक त्रिवेणी यहाँ भी ...

- केशव मोहन पाण्डेय

पूर्वांचल एकता मंच 5वें विश्व भोजपुरी सम्मलेन में श्री सिपाही सिंह श्रीमंत सम्मान। विभिन्न मंचों के लिए दर्जनों नाटकों का लेखन-निर्देशन। टेली फिल्म 'औलाद', लघु-फिल्म 'लास्ट ईयर' समेत भोजपुरी फिल्म 'कब आई डोलिया कहार' का लेखन। पता : हाउस न.—244 सी, द्वितीय तल, गली न. 6 बी/ 4, के-ब्लॉक, महिपालपुर एक्स., नई दिल्ली– 110037

मन में भ्रमण का उत्साह, सौंदर्य का आकर्षण और दो देशों की राजनैतिक सीमा के साक्षात्कार की त्रिवेणी में प्रवाहित होकर ही त्रिवेणी जा रहा था। हम छः मित्र और एक जीप ड्राइवर! मुझे छोड़ अन्य सभी इस प्रांत से परिचित थे। मेरी बेचैनी का एक यह भी कारण था कि आज तक त्रिवेणी स्थान का नाम इलाहाबाद के संगम के लिए सुना था। यह कौन त्रिवेणी है?

उत्तर-प्रदेश के कुशीनगर जिला मुख्यालय से लगभग 90 किलोमीटर उत्तर-पश्चिम की दिशा में है त्रिवेणी। पहले गंडक की भयावहता को पार करना दुरूह था, परन्तु अब पनियहवा का समानान्तर रेल-सड़क पुल बहुत ही सहज कर दिया है। हम पुल से गुजरते हुए पड़ोसी देश नेपाल की सीमा छूने चल पड़े हैं। यह गंडक नदी है जिसमे शालिग्राम प्रस्तर की प्राप्ति होती है। शालिग्राम प्रस्तर अर्थात् नारायण का प्रतिरूप। शायद इसीलिए इसे नारायणी नदी भी कहते हैं। . . . हम पुल पर जीप रोक कर ऊपर से ही गंडक की विराटता, सौंदर्य और प्रवाह देखने लगे। अब हम गंडक को पार कर गए हैं। उस गंडक को, जो बरसात में अपने यौवन के उन्माद में सारी बाधाओं को तोड़ देती है। अपने उग्र रूप में पता नहीं कितने उर्वर खेतों, लहलहाती फसलों, झुमते पेड़-पौधों और असीम सभ्यता-संस्कारों को ढोने वाले गाँवों को लील जाती है। इसके आक्रामक खोह में अनगिनत जीव-जंतु, बच्चे-बूढ़े और जवान विलीन हो गए हैं। उर्वर मिट्टी रेत के ढेर में बदल गई है। फिर भी इसके कछारों से न जाने क्या मोह है कि लोग मौत से भी जूझकर जीवन जीत लेते हैं।

नदियों के प्रति आस्था के कारण हमने भी एक सिक्का प्रवाहित किया। आस्था में अंधा मानव तर्क नहीं मानता, नहीं तो इतना कुछ स्वाहा करने वाली गंडक को सिक्के से क्या प्रयोजन? अभी एक-डेढ़ किलोमीटर भी आगे नहीं बढ़े होंगे कि बिहार राज्य प्रारंभ हो जाता है। जिला पश्चिमी चम्पारण! चम्पारण शब्द से भारतीय इतिहास का एक अध्याय, बापू के नाम और तस्वीर की स्मृति के साथ इस पावन भूमि के गौरव के सामने नत् होने का मन करता है। सामने हैं अरण्य देव! अपना दिल खोले, पलक-पावड़े बिछाए ये महोदय शायद हमारी ही प्रतीक्षा कर रहे हैं! यहाँ कभी केवल चंपक-अरण्य ही रहा होगा, तभी तो इस प्रांतर का नाम चंपारण पड़ा होगा। ये महोदय 840 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में अपनी पहचान बनाए हुए हैं। साखो-सागौन के आधिक्य वाले ये अरण्य देव सीसम, सेमल, जामुन, खैर, बेंत आदि के भी खजाना हैं। इस कानन के साथ अभी एक किलोमीटर ही चला जाता है कि दिल्ली-रक्सौल रेल-मार्ग के किनारे मदनपुर देवी माता का स्थान है। बहुत पवित्र शक्तिपीठ है। यहाँ आए सभी भक्तों की मनोकामना पूरी करती हैं माँ। जैसे उस वन-प्रांत की ओर से आगंतुकों के लिए पहला पुरस्कार है यह! यहाँ आने के लिए सामने ही वाल्मीकि नगर रेलवे स्टेशन है। हम भी दर्शन किए। पूजन-अर्चन के बाद चाय लेकर हम गहन वन प्रांत में चल पड़े।

. . छोटे-छोटे गाँव! उबड़-खाबड़ रास्ते! अपनी दिनचर्या में लगे लोग! जंगल की चारा चबाती गाएँ! रम्भाते बछड़े! कंचा और कबड्डी खेलते बच्चे! मेमियाती बकरियाँ! कूड़े के ढेर पर दंगल करती मुर्गियाँ और लुका-छिपी करती रसीली हवाएँ! मैं उनके जीवन की दुरुहता देखकर दुखी था, वे अपनी जीवन-लीला में मस्त! मैंने जगह-जगह सावधानी और जानकारी के लिए लगे बोर्ड को देखा - वाल्मीकि व्याघ्र योजना। हाय रे मानव! मानव की प्रवृति ऐसे बदली कि इन वन्य-जीवों की रक्षा के लिए योजना चलाने की आवश्यकता पड़ गई? - पता चला कि यह 335.6 किलोमीटर मे फैली देश की 18 वीं और बिहार की दूसरी परियोजना है। इस परियोजना की शुरुआत 1990 में की गई। यह उत्तर में रायल चितवन नेशनल पार्क (नेपाल) से तथा पश्चिम में गंडक की जल-धाराओं से घिरा है।

इतिहासकार न जाने क्या कहते हैं, लेकिन इस वन में रामायण के रचयिता वाल्मीकि जी का पवित्र आश्रम है। यहाँ बाघ, चिता, तेंदुआ, भेड़िया, नीलगाय, काला हिरण, भेड़िया, बन्दर, वनमुर्गी, जंगली बिल्ली, अजगर, छिपकलियों के अलावा जूलोजी-बाटनी और चरकशास्त्र की असंख्य सामाग्रियाँ हैं। हम आगे बढ़े जा रहे हैं। सड़क अपने रूप से गुदगुदा कर कहीं-कहीं हँसाती है तो कहीं-कहीं डराती भी है, रुलाती भी है। रूप में विविधता है। चाल में सर्पिली है। ऊँचाई पर चढ़ते-उतरते समय कोई मान की हुई नखरीली गोरी लगती है। आगे छोटे-छोटे पत्थरों से भरा ट्राली पलटा था। यहाँ अवैध रूप से पत्थर उत्खनन का काम बड़े पैमाने पर होता है। हम एक साथ अनेक रसों की अनुभूति कर रहे थे कि जंगल से निकलकर एकाएक कई लोग सड़क पर आ गए। हमें डर हुआ कि कहीं डाकुओं का समूह तो नहीं! पता चला कि नीचे एक गड्ढा है, जिसका पानी उतर रहा है। ये लोग उसी में मछली पकड़ रहे थे।

यहाँ की औरतें घर के कामों के साथ-साथ सूखी लकड़ियाँ बटोरती हैं। बच्चे पढ़ाई कम, बकरियाँ अधिक चराते हैं। यहाँ संयुक्त परिवार बड़ी सफलता से संचालित होता है। बहुत अंतराल से शिक्षा से कोसों दूर रहे ये लोग अब बड़ी बेचैनी से जूझ गए हैं। कुछ दूर खुली जगह, फिर मोड़ और अब आ गया वाल्मीकि नगर। सामने अद्भुत नजारा है। नीचे पूर्वी गंडक नहर का हरा पानी, जो कुछ दूरी पर जाकर 15 मेगावाट के विद्युत परियोजना को जन्म देती है। सामने जंगल का वहीं गर्वीला स्वरूप, जिसे हम मदनपुर से आत्मसात् करते आ रहे

हैं। ऊपर नीला-धुला आसमान। नहर के एक ओर साखो-सागौन और दूसरी ओर खिलखिलाते गुलमोहर की हरियाली। आगे एक गोल-चौक है, जहाँ ढाई मीटर ऊँचा एक स्तंभ है। इसे देखकर यहाँ से 55-60 किलोमीटर पूरब में स्थित लौरिया के अशोक स्तंभ की याद आ जाती है। उसकी प्रमाणिकता है, पर इसकी नहीं। सैनिक छावनियों को पार करके हम सदानीरा गंडक के किनारे थे। नहीं-नहीं, कुछ पल भ्रम में रहे। आँखें देख रही थीं। मन नहीं मान रहा था। लगता था कि हम किसी और लोक में आ गए हैं। पीछे एक पुराना गेस्ट-हाउस है। उजड़ा सा। इस समय बड़ी बारीकी से उसके मरम्मत का काम चल रहा है।

अब हम गंडक के कछार पर खड़े हैं लेकिन वह हमसे 7-8 मीटर नीचे बह रही है। इस पिकनिक-स्पॉट को कभी खुब विकसित किया गया था, अवशेष इस बात को स्पष्ट करते हैं। कितना सौंदर्य है यहाँ! मन करता है कि सबको अपने में समेट लूँ। आँखें इस रूप को पी लेने के लिए बेचैन हैं। पैर नाचने को बावले हैं। पीछे विराट कानन-प्रदेश, सामने हिमालय शृंखला की सबसे नीचली हरी-भरी पहाड़ियाँ, नीचे कलकल करती गंडक और ऊपर ललचता-सा नीला आकाश। प्रसन्नता की इन लहरों में एक टीस मन को सालता है कि प्रकृति का यह अनुपम सौंदर्य और शैलानियों के नाम पर केवल हम सात! क्या कारण है कि इस अभ्यारण्य में एक अपरिचित भय से मन सहमा रहता है? क्यों कभी कोई वादी तो कभी कोई सलाम जैसे शब्द डराते रहते हैं?

हम बहुत देर तक बैठ कर प्रकृति के इस रूप से आँखें चार करते रहे। अब हमारी जीप विदेशी कहलाने को आतुर हो उठी। भैंसालोटन बैराज हमें नेपाल कब पहुँचा दिया, पता ही नहीं चला। हम इंडो-नेपाल सीमा पार कर गए। 4 दिसम्बर 1959 को नेपाल की महारानी और भारत सरकार द्वारा जल वितरण के लिए हुए समझौते के फलस्वरूप भैंसालोटन बैराज का अस्तित्व सार्वजनिक यातायात के रूप में सामने आया। यहाँ से मुख्य गंडक नहर, पूर्वी गंडक नहर एवं पश्चिमी नेपाल नहर निकलती है। अब हम त्रिवेणी में हैं। हिंदुओं का धार्मिक स्थल! त्रिवेणी नेपाल के नवलपरासी जिले का एक छोटा-सा बाजार है। गंडक के किनारे चलती सड़क एक दो बार नाचती सी लगती है। दाएँ असीम जलराशि वाली गंडक का स्वरूप, बाएँ छोटी-छोटी झोपड़ियों में तली मछली और बोतलबंद दारु के साथ मुरी-चिउड़ा की दुकान। दुकान की सुन्दरता के नाम पर उसकी विक्रेता नेपाली स्त्रियाँ, लड़कियाँ और पीछे हरियाली में नहाई पहाड़ियाँ। ये है त्रिवेणी ! छोटा बाजार। छोटी-छोटी मल्टी-परपज दुकानें। एक ही दुकान में सबकुछ। चाय-नाश्ते के दुकान में ही तली मछली और बोतलबंद दारु के साथ मुरी-चिउड़ा और शीतल पेय। हम मित्रों ने आपस में किसी पर कोई बंधन नहीं लगाया। छककर आनंद उठाया। अब हम वहाँ गए, जहाँ मेला लगता है। यहाँ मकर-संक्रांति के दिन पवित्र स्नान-मेला लगता है। नदी में उतरने के लिए सीढ़ियाँ बनी हैं। किनारे छोटे-बड़े कई मंदिर हैं और सघन छाया युक्त एक विशाल वट-वृक्ष भी है। नदी में छोटी-छोटी नौकाएँ देखकर हम दौड़ पड़े। हमने नौका-विहार का आनंद लिया। 'शैकत-शैय्या' वाली 'तनवंगी गंगा' में नहीं, कंठ तक भरी गंडक में।

आगे जाने पर गज-ग्राह का युद्ध स्थल है। श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार विष्णु के भक्त गज और ग्राह के बीच यही सं युद्ध प्रारंभ हुआ था। कितना रमणीय है यह सौंदर्य-प्रदेश! गंडक से तर इस क्षेत्र की असीम रूप-राशि से जहाँ मैं आनंदित हो रहा था, वहीं मौन होने लगा। जैसे शब्द मर गए या ध्वनि लकवाग्रस्त हो गई। आह्लाद में पीड़ा का क्या काम? परन्तु बावरा मन माने तब तो! वह तो भटकने लगा। यह क्षेत्र केवल अपने रूप में ही आकर्षण नहीं रखता है, इसके अतीत में भी आकर्षण है। . . . इसी प्रांतर ने रत्नाकर को वाल्मीकि बना दिया। सीता माँ ने अपने जीवन के मातृत्व काल को यहीं व्यतीत किया। लव-कुश इसी गंडक में स्नान किए होंगे। महाभारत के 20वें अध्याय में कृष्ण ने भी शायद इसी गंडकी-प्रदेश का वर्णन किया है। सम्राट अशोक को भी इस क्षेत्र का ज्ञान था। 'नंद वंश' का नंदनगढ़ इसी तराई प्रदेश में है। बापू और बा इस मिट्टी को छू चुके हैं। नेहरू की आँखें इस सौंदर्य को पी चुकी हैं। फिर किस अप्रत्क्ष कारण ने शैलानियों को नहीं आकर्षित किया? शैलानियों को इस रूप से डर क्यों लगता है? . . . ये प्रश्न मेरे मन को मथ देते हैं।

त्रिवेणी में तीन अलग-अलग नदियाँ गंडक, पंचनद तथा सोनहा का मिलन होता है। इनमें गंडक या गंडकी या नारायनी मुख्य नदी है। इतना ही नहीं, यहाँ तीन राजनैतिक सीमा रेखाएँ भी मिलती हैं। - एक ओर से नेपाल की, दूसरी ओर से पश्चिमी चम्पारण (बिहार) की और पश्चिम से जाओ तो उत्तर-प्रदेश के महराजगंज की सीमा भी गलबाँही करती है। जंगल, नदी और पहाड़ जैसी तीन प्राकृतिक रचनाएँ भी दृष्टिगत होती हैं। यहाँ पुल, फूल और कंद-मूल का भी आनंद मिलता है। यहाँ मन, मस्तिष्क और तन को आराम मिलता है। यहाँ भौतिक रूप से सामान्य जीवन, राजनैतिक शिथिलता और सामाजिक चुप्पी है। चर्चा से दूर रहकर भी नैसर्गिक सुख का यह दृष्टांत उपेक्षा से आहत नहीं है। बिहार सरकार सड़कों का जीर्णोद्धार करा रही है। उत्तर-प्रदेश ने ध्यान देना तेज कर दिया है। गेस्ट-हाउस चमकने लगा है। सीमा सुरक्षा बल की मौजुदगी बढ़ने लगी है। लग रहा है कि तीन सीमा रेखाओं का यह सौंदर्य सबके दिलों में उतरने को व्याकुल है।

भ्रमण की उत्कंठा जो मेरे मन में रहती थी, यहाँ आने पर और बढ़ गई। प्रकृति की चित्रकारियाँ मुझे और बुलावा भेजने लगीं। मैं कहीं भी जाता हूँ, पहली नजर में वहाँ त्रिवेणी को ढूढता हूँ। अब मैं बार-बार त्रिवेणी जाने लगा हूँ। छूने लगा हूँ। पूछने लगा हूँ, - 'त्रिवेणी, अब कैसी हो?'

जैसे ममता भरी हाथों को मेरे माथे पर फेरती त्रिवेणी कहती है, - 'ऐसे ही आते रहो, मेरा हाल अच्छा तो होता ही जाएगा।'

त्रिवेणी के सौंदर्य पर अब अक्सर सोचता हूँ कि जब प्रकृति में जीता मनुष्य अपने रूप-प्रदर्शन के लिए इतना उत्कंठित रहता है, तब प्रकृति क्यों नहीं? . . . नदी किनारे घूमते-घूमते हम भी पत्थरों की भीड़ में एक-दो शालिग्राम पत्थर पा ही गए। मैंने कुछ अन्य रोचक आकृति वाले पत्थरों को भी बैग मे रखा। मन सौंदर्य से अघाया तथा परिस्थितियों से व्यथित था। हम जीते भी थे, हारे भी थे। सूर्य की टहक कम होते-होते हमारी जीप भी घर की ओर दौड़ पड़ी। ❊

बहुत दिन मैं तुम्हारे दर्द को सीने में लेकर,
जीभ कटवाता रहा हूं.
उसे शिव की तरह लेकर गले में सारी पृथ्वी घूम आया हूं
कई युग जाग के काटे हैं मैंने
तुम्हारा दर्द दाख़िल हो चुका अब नज़्म में और सो गया है
पुराने साँप को आख़िर अंधेरे बिल में जा के नींद आई है.

इस कविता में ख़ासतौर पर शिव का ज़िक्र आता है, पृथ्वी का ज़िक्र आता है. हिंदुस्तानी ज़बान की ख़ूबी ही ऐसी है कि दाईं तरफ़ से बैठो तो उर्दू हो जाती है और बाईं तरफ़ से बैठो, तो हिंदी हो जाती है. **- गुलज़ार**

कहानी

अटूट रिश्ते

- ज्योतिर्मयी पन्त

ट्रांसफर के बाद नए शहर में रहने के लिए घर ढूँढना भी सरल नहीं .अलका और विवेक लगभग एक महीने से इस काम में लगे हुए थे ..ऑफिस से आकर रोज अपने मित्रों और प्रोपर्टी डीलरों के बताये मकान देखने पहुँच जाते| कोई उनकी ज़रूरतों के मुताबिक नहीं होता तो कोई जेब के | शहर के शोर से दूर भी हो और सारी सुविधाएँ पास हों, ऐसा संयोग होना मुश्किल था| बच्चों के स्कूल, पति के ऑफिस, बैंक, बाज़ार | अस्पताल और पार्क आस पास हों | महीने भर से वे गेस्ट हॉउस में थे पर अब अधिक दिन वहाँ रहना कठिन हो रहा था |

तभी विवेक के एक सहयोगी ने किसी पोश कॉलोनी में खाली मकान की बात की थी. शहर से थोड़ी दूरी के कारण किराये अधिक नहीं थे पर आने जाने में परेशानियाँ हो सकती थी और समय भी अधिक लग सकता था| अलका और विवेक भी वहाँ जाकर देख लेना चाहते थे | हर रोज़ नये मकानों के सुन्दर अत्याधुनिक नमूनें देख खुश होते और कल्पना करते ऐसे ही सुन्दर घर की जो अपना हो | सुदर फूलों की क्यारियाँ हों, घर के चारों ओर....`.एक बंगला बने न्यारा` की धुन मन गुनगुनाने लगता | यह संभव होगा भी कि नहीं, न जानते हुए भी सपनों के महल बनते रहते| पर अभी तो तीन बेडरूम वाला घर ही काफी था | दो बच्चों और माँ जी के साथ |

कई दिनों की दौड़ धूप के बाद एक मकान पसंद आया| बहु मंजिली इमारत थी| लिफ्ट की सुविधा थी| इसलिए पाँचवीं मंजिल के मकान में आने का मन बना लिया | हसे पंद्रह दिन में सामान भी आगया और घर गृहस्थी बसने लगी.. .अभी अपने कामों में ही इतनी व्यस्तता रही कि आस पास के लोगों से जान पहचान भी नहीं हो पाई .अलबत्ता बच्चों को बहुत से दोस्त स्कूल और घर के ..मिल गए और बाहर आते -जाते लोगों से हेलो-हाय से कुछ शुरुआत. घर के पास ही बच्चों की स्कूल बस आती वहाँ उन्हें छोड़ने जाते समय पास के एक मकान में अलका की दृष्टि अटक सी जाती | बहुत खूबसूरत छोटा सा दुमंजला मकान | पर चारों ओर रंग बिरंगे फूलों से भरी क्यारियाँ | इतने सुन्दर ढंग से सजी हुई ..मन करता देखते रहो | उसे अपने बड़े पापा यानी ताऊ जी का घर याद आ जाता .बागबानी का बहुत शौक था उन्हें | किसी कम्पनी के ऊँचे पद पर कार्य रत थे | घर में नौकर -चाकरों की कमी नहीं थी | तभी एक दिन बच्चों को स्कूल की बस में बिठा कर लौट रही थी | तभी देखा एक महिला दो बुजुर्ग लोगों के साथ आ रही थी| एक बुज़ुर्ग व्यक्ति कुछ कमज़ोर से लग रहे थे | वह महिला उन्हें बड़े स्नेह से हाथ पकड़ कर चल रही थी | वृद्ध महिला पीछे धीरे धीरे आ रहीं थीं | उसी घर के पास आकर वे रुके| महिला गेट खोलने के लिए आगे बढ़ी थी कि वह सामने ही आ गई |परिचय बढ़ाने के लिए वह बात चीत शुरू करने की सोच ही रही थी कि गेट खुल गया था | अब शायद आज बात न हो ,वह आगे बढ़ी ही थी कि किसी ने आवाज़ दी `.....अलका .....तुम यहाँ ?

सुनो .....वह हैरान होकर मुड़ी .अरे !!ये कौन है मुझे पुकारनेवाला? सामने वही महिला थी | अरे मीता तुम ?...अलका ने असमंजस से पूछा ..... मीता बोली मैंने तुम्हें देखते ही पहचान तो लिया था पर यकीं नहीं हो रहा था इसीलिए पहले नहीं बोली| पर सोचा अगर फिर मुलाकात न हुई तो ...तुम यहाँ से जा ही रही थी| फिर यह ख्याल आ गया ..यदि तुमने मुझे पहचानने से मना कर दिया तो .....मुझे वो बात अभी भी याद है तुमने दोस्ती खत्म कर देनी चाही थी .मेरी बातें सुनने से तुमने इंकार कर दिया था तुमने मेरी सोच को घटिया कह दिया था | फिर सोचा आवाज़ देकर पक्का ही कर लूँ कि तुम अलका ही हो | ये सब बोलते हुए वो गले भी लग गई ..अब चलो अन्दर बैठ कर आराम से इन पंद्रह वर्षों के अन्तराल को बातों से पाटे...क्या हुआ इस बीच .?....अलका ने भी जल्दी से बताया कि वह पास ही रहने आई है | अब फुर्सत से शाम को मिलेगी अभी घर के बहुत से कम निबटाने हैं | वह मीता के माता -पिता से मिली | दोनों ने इतने प्यार से आशीर्वादों से उसका दामन भर दिया | घर आकर काम में व्यस्त तो हो गई पर मन आज पीछे की ओर दौड़ पड़ा था | बचपन से वह मीता को जानती थी सहेली भी थी और सहपाठी भी | लेकिन

कॉलेज में आने के बाद दोनों की दोस्ती टूट सी गई | असल में मीता के पिता जी उसके ताऊ जी के यहाँ ड्राइवर थे | सुबह शाम ऑफिस आते जाते अपने दुःख दर्द अपने साहब को बता ही देते थे | घर में बूढ़े माँ-बाप की जिम्मेदारी के कारण उसकी पत्नी गाँव में ही रहती थी .इकलौती बेटी को पढने का बेहद शौक था | अपने स्कूल में हमेशा प्रथम आती | चौथी -पांचवीं के बाद आगे पढ़ना संभव नहीं था | गाँव के लोग तो अब उसके लिए रिश्ते भी तय करने लगे थे .वह विरोध करता भी तो किस बल पर? शहर तो उन्हें ला नहीं सकता था | तभी ताऊ जी ने उसे सुझाया था कि अगर उसे ठीक लगे तो अपने घर के आउट हॉउस में वे उसे रहने को जगह दे सकते हैं | उसकी पत्नी घर के तथा और घरों में काम कर सकती है | अपने माँ बापू को वह साथ रख सकता है | बेटी को पढ़ने में आर्थिक मदद वे करेंगे ही| मीता के पिता जी बिशन चाचा धीरे धीरे इस घर के सदस्य से हो गए | घर के बाहर के सभी काम उन्होंने अपने हाथ में ले लिए | शीला चाची खाना बनाने से लेकर सब काम करती| अब मीता का एडमिशन अच्छे स्कूल में हो गया . पढाई में होशियार तो वह थी ही अंग्रेजी भी उसने आसानी से सीख ली थी | स्कूल में किसी को भी उसके घर के हालात पता नहीं थे | लोकल गार्डियन ताऊ जी ही थे | अलका और वो दोनों सातवीं क्लास से साथ ही थे ..पर मीता की पढाई को लेकर घर के बाकी लोग नाराज़ ही रहते .उनके अनुसार उसको पढलिख कर कौन सा अफसर बनना है | परिवार के लोगों को यह भी अखरता कि ताऊ जी गैरों के लिए इतना क्यों कर रहे हैं | रिश्तेदारों के बच्चे भी तो हैं | उधर मीता के गाँव वाले भी उनकी हँसी ही उड़ाते.बिशन चाचा भी कई बार मीता को पढाई छोड़ने की बात करते और चाची की चिंता उसके व्याह को लेकर बढ़ रही थी |

ड्राइवर की बेटी पढ़ लिख जाएगी तो कौन उससे शादी करेगा .. ?

इधर मीता थी कि इन बातों से उसके इरादे और पक्के होते जा रहे थे | अब तो उसने अपना लक्ष्य निश्चित कर लिया कि बड़ी अफसर बन कर ही दिखाना है .वह मेहनती भी खूब थी | अब तो उसे हर कक्षा में स्कॉलरशिप मिल जाती | जिससे आगे कि पढाई में बहुत आसानी हो गई थी | असल में इसी सिलसिले में एक बार बिशन चाचा को कॉलेज के प्रिंसिपल ने बुलाया था | बिशन चाचा जब मिलने आये तब उसे भी आफिस में बुलाया गया | वहीँ से आते समय वह चाचा को अपना कैम्पस दिखाने ले जा रही थी प्रिंसिपल महोदय द्वारा की गई तारीफों से आज पिता का ह्रदय गदगद हो रहा था | वे स्वयं तो स्कूल की पढाई भी पूरी नहीं कर पाए थे ..बाद में जब किसी सहपाठी ने उनका परिचय पूछा था .....तो अचानक न जाने क्यों उसने उत्तर दिया ..``...वे मेरे पिताजी .....कहते कहते वो रुक गई और बोली .....पिता जी के ड्राइवर हैं .....किसी काम से आये थे.`` बात कहाँ छुपने वाली थी | जंगल की आग की तरह हर जगह फ़ैल गई | अब कोई उसे कुछ ताने कसता कोई कुछ कहता .जो लोग उससे चिढ़ते थे उनको तो मौका मिल गया ..` .लो यही सीखा पढ़ लिख कर.....अपने माँ बाप ही अपने न हुए तो और कौन होगा ...? घर में भी यही बात हुई .चाची ने तो रो रो कर बुरा हाल `आग लगे ये शहर और ये पढाई.....सारे संस्कार ही भुला दिए..क्या यही देखना सुनना था ...अब आगे की सोचो ....क्या करना है ...बिशन चाचा तो हक्के बक्के से थे ...चाची की बात सुन कर कहीं गाँव ही वापस न भेज दें सभी को |

सब कुछ सुनकर ताऊ जी ने मीता को बुलाया था उन्हें यकीं नहीं हो रहा था कि मीता ऐसा कह सकती है ...कोई न कारण तो होगा ही | मीता बहुत शर्मिंदा थी | पर उसने कहा कि उसने अपना परिचय इसलिए छुपा लिया कि उसे डर था कि लोग फिर वही बात दोहराएंगे.... कि इसे पढ़ा कर क्या फायदा ? एक तो लड़की वह भी गरीब घर की... इतने अच्छे कॉलेज में ऐसे लोगों को रखने से कॉलेज की भी इज्जत घट जाती है .....इसीलिए उसे झूठ का सहारा लेना पड़ा .ताकि न तो उसकी पढाई छूटे न कॉलेज की बदनामी हो ` एक ताऊ जी ही थे जिन्होंने उसकी बात समझी ....इसी बात को लेकर अलका और मीता की दोस्ती भी टूट ने लगी .....

इसी बीच अलका की शादी हो गई | वह अपनी गृहस्थी में रम गई | आज अगर मीता न मिलती तो शायद उसे ये बातें कभी याद भी न आती | उससे मिलकर सारी यादें लौट आई .उसे समझ नहीं आ रहा था कि अब दुबारा उससे दोस्ती करे या नहीं ? वह बड़ी दुविधा में थी .. शाम को मिलने का वादा तो कर दिया, अब करे तो क्या करे? वह स्वयं न जाये तो मीता ही आ जाएगी फिर क्या होगा?सोचते सोचते वह परेशान होने लगी | तभी मन में विचार आया अब शाम को मिलने अवश्य जाएगी | पहले इस बीच की बातों को सुन समझ ले तब निश्चय करेगी कि दोस्ती रहे या ख़त्म हो .यहाँ वह कर क्या रही है? पहले उसके घर जाऊँगी फिर आगे देखा जायेगा | शाम को बच्चों के आने के बाद उनके होमवर्क आदि काम पूरे कर उसने माँ जी कहा कि उसे एक पुरानी सहेली से मिलने जाना है, जो इसी कालोनी में रहती है | कई वर्षों के बाद मिलना है अतः ज्यादा समय लग सकता है | माँ जी ने उसे निश्चिन्त होकर जाने को कहा |

मीता शाम पाँच बजे ही उसके घर पहुँच गई उसे सब्र नहीं हो रहा था | वहां पहुँच कर गेट के पास जाकर ज्यों ही बेल बजाने को हाथ बढाया तो दीवार पर चमचमाती नेम प्लेटपर नज़र पड़ी | मीता शर्मा आइ.ए.एस .अलका को लगा कि उसे यहाँ से चले जाना चाहिए ..क्योंकि मीता ने अपना लक्ष्य पूरा कर लिया ...इस बात का सबूत यही है अब उसकी बातें सुनकर उसे शर्मिंदा होना पड़ेगा ..पुरानी कहा सुनी को लेकर .लेकिन तभी एक औरत आई.उसने गेट खोल कर अभिवादन किया और अपने साथ अन्दर ले गई | अलका को बिठा कर वह अन्दर गई और पानी लेकर आई ..बोली मैडम अभी आती हैं ...वह कमरे की सुन्दर सजावट को निहारती रही | दीवार पर कॉलेज के दिनों के ग्रुप फोटो, ट्रोफी, डिग्री आदि के बीचों बीच थी ताऊ जी की फोटो | अलका को दूसरी बार झटका सा लगा | खैर थोड़ी ही देर में मीता आ गई फिर से गले मिली | तभी बताना शुरू किया ...अलका कितने वर्षों बाद मिलना हुआ ...कभी सोचा भी न था ..तू आयेगी या नहीं यही सोचती रही दिन भर| खैर तेरे बारे में कभी कभार सूचना मिल जाती थी | पर रूबरू होने की बात और है .तेरे चेहरे में कई प्रश्न झलक रहे हैं चल ..पहले ये पहेली बुझा लें फिर नई शुरुआत करें |

अलका तुम्हारे जाने के बाद मेरी पढाई जारी रही | अपना लक्ष्य भी पूरा कर लिया | जो लोग जलते थे वे खुद ब खुद शांत हो गए | माँ को तो ताऊ जी ने समझा दिया था | पिता जी तो नाराज़ रह ही नहीं सकते थे | जिन्होंने पहले ही मेरे कारण अपना गाँव -घर तक छोड़ दिया था | अब मेरी बारी थी कि मैं अपने साथ उनकी तपस्या और त्याग का मान रख सकूँ | पहले ट्रेनिंग फिर कई जगह की पोस्टिंग के बाद यहाँ हूँ. .पिछले एक साल से .माँ बापू से तो तुम सुबह मिल ही चुकी हो | अब कभी वे गाँव चले जाते हैं और कभी मेरे साथ रहते हैं | रिटायर होने के बाद यही सिलसिला है | वे खुश हैं कि लड़की पढ़ लिख कर अफसर बन ही गई | अब अफसर के माँ बापू तो हैं | विवाह मैंने नहीं किया है इसी की चिंता उन्हें है | पहले भी थी ही | खैर ! अब तुम बताओ अपने हाल?

अलका बड़ी मायूस सी हुई | बस हाल क्या वही ... शादी, बच्चे, घर परिवार ....इससे आगे क्या?

जब अलका ने कहा अब तो पड़ोस में हैं फिर से आना जाना होगा पहले की ही तरह | तभी मीता ने कहा लेकिन एक सरप्राइज़ है तुम्हारे लिए .चाहो तो आज मिलो या और किसी दिन .अलका को लग रहा था आज का दिन बहुत खास है क्या क्या खुशियाँ आ रही हैं ? मीता अलका को दूसरी मंजिल में ले गई | सुन्दर सजे हुए दो कमरे,एक स्टडी रूम ,बालकनी छोटा सा किचन हर सुविधा से उपयुक्त | जिस औरत ने दरवाज़ा खोला था, वह बालकनी में गमलों में पानी दे रही थी मीता को देखते ही बोली, मैडम ...देख लीजिये मैंने कमरे साफ कर दिए हैं आपने जैसा कहा था ..कुछ कमी हो तो बताइए ..सर कब आ रहे हैं ? उनके बिना तो घर सूना ही हो जाता है ..... मीता ने कहा ..अरे ठीक होना ही चाहिए ...बस अभी निकलना है एयर पोर्ट के लिए ...अलका चुप चाप पीछे खड़ी थी | न जाने कौन सर आ रहे हैं ..चलो जो भी हों | मीता पीछे मुड़ कर बोली ...अरे किस सोच में गुम हो .?चलो मेरे साथ ऐसे व्यक्ति से मिलोगी... तुम भी क्या याद रखोगी |अपने घर पर फोन कर दो वापस आते आते आठ बज जायेंगे | अलका ने वैसा ही किया| एयर पोर्ट में जिस को अपनी आँखों के सामने अलका ने देखा उसके तो जैसे होश ही उड़ गए | उसके अपने ताऊ जी मीता के घर में ?उसने तो सुना था ताई जी के स्वर्ग सिधारने के बाद वे अकेले से हो गए थे | भाई भतीजों की नज़र उनकी ज़मीन जायदाद पर थी पर उन्हें अपने साथ रखने को कोई तैयार न था | **(क्रमशः पेज नं. 54)**

कहानी

गिरमिटिया मज़दूर

- इंदु सिंह

कितने बरस गुज़र गए अपने देश गए हुए, बल्कि लगता है कितनी सदियाँ गुज़र गईं और मै तरस गया अपने देश, अपने गाँव नरीखेड़ा की मिटटी को छूने के लिए। नियति थी की मै यहाँ ' सूरीनाम' में 'गिरमिटिया मजदूर ' बन कर आ गया था। उस वक्त ये नहीं पता था की यही हमारी उपाधि हो जाएगी। एक अच्छी सोच के साथ यहाँ आया था लालच बस यही था कि यहाँ नौकरी मिलेगी और मै अपने घर-परिवार, गाँव सबका नाम रोशन करूँगा जैसे और भी आस-पास के गाँव के लोग यहाँ सूरीनाम आकर करते हैं। कभी कोई वापस लौट कर ही नहीं आता इतना खुश हो जाते हैं सब यहाँ। कच्ची उम्र में तरक्की के सपने संजोये मै भी चला आया था 'दक्षिण अमेरिका' के पश्चिम में स्थित छोटे से देश 'सूरीनाम' में। यहाँ तक का सफ़र पानी के जहाज का था और सारा खर्चा हमारे अंग्रेज़ मालिकों ने ही उठाया था जिनसे हमने यहाँ की तारीफें सुनी थी और बस उसी ख़ुशी की तलाश में,गरीबी से निजात पाने मै और मेरे जैसे न जाने कितने ही लोग आये थे इंडिया से। उस दिन अपना गाँव - देश छोड़ते हुए ज़रा भी दुःख नहीं हुआ था उम्र ही ऐसी थी, बस सपनो को मुट्ठी में करना था और उन्ही सपनो को सच करने का वादा दिलाकर ही अंग्रेज़ हमे यहाँ लाये थे।कई दिनों के लम्बे सफ़र और उसकी थकान के बाद जैसे ही जहाज़ बंदरगाह पर पहुँचता है जंजीरों से जकड़ा जाता है ठीक उसी तरह से जकड़ दिए गए थे हम सब भी सदा के लिए। जहाज़ तो एक समय बाद वापस मुक्त हो जाता है लेकिन हमारी मुक्ति हमे मौत ही दिलाएगी।अंग्रेजों द्वारा दिलाये गए सारे वादे खोखले थे और सामने था रात्रि के समंदर जैसा काला पानी सा सच !

सूरीनाम जहाँ की भाषा को 'सरनामी' भाषा कहते हैं,सीखने में हमे काफी वक्त लगा क्योंकि हमसे बात करने के लिए इस भाषा का नहीं बल्कि 'कोड़ों की मार ' भाषा का ही अधिक प्रयोग किया जाता था। रोज़ अनगिनत बार कोड़ों की मार से शरीर नीला-काला हो जाता था पर धीरे-धीरे चीखें कम निकलती थीं,आदत हो गई थी शरीर को। यहाँ मै ही अकेला नहीं था बल्कि पूरे भारत वर्ष के अलग-अलग राज्यों-प्रान्तों की भीड़ थी और सब के सब हमारी ही तरह अच्छे जीवन के प्रलोभन से ही यहाँ आये थे। कलकत्ता के लोगों की संख्या अधिक थी। भारतीय इतने अधिक थे कि यूँ लगता था अपने ही देश का कोई छोटा सा शहर बसा है सूरीनाम में। सूरीनाम में गन्ना बहुत अधिक होता है और हम सबसे यहाँ गन्ने की खेती ही करवाई जाती थी। पूरे दिन बिना खाना-पानी के काम कराया जाता था और सिर्फ एक बार इतना ही कहाँ मिलता था की हम जिन्दा रह सकें। हमारे पास कोई दूसरा विकल्प नहीं था क्योंकि हम वहां से भाग भी नहीं सकते थे। पानी के रास्ते जहाज़ से ले तो आये गए किन्तु वापसी का कोई भी रास्ता हमारे लिए नहीं था। हमारा जीवन समुद्र के खारे पानी के साथ मिलकर नमकीन ही रह गया,बल्कि नमक कुछ अधिक ही। अपने घर और देश से दूर यहाँ आकर हमे ये अहसास हुआ कि क्या खो चुके हैं हम। समय बीता और साथ ही हमारा जीवन भी, एक नए जीवन की शुरुआत भी यहीं से हुई और उसका पहला कदम था यहीं की एक लड़की से शादी। हम एक-दूसरे को अधिक नहीं जानते थे और न ही एक-दूसरे की भाषा की हमे समझ थी लेकिन फिर ये भी तो सच है प्यार कब भाषा का मोहताज़ हुआ है। आँखों ने मन की बातें पढ़ लीं और ज़ुबाँ ने जो कहना चाहा वो कानो से लेकर ह्रदय तक संप्रेषित हो गया। एक बार फिर से जीवन जीने की चाह जगी। हमने शादी कर ली और शादी के एक वर्ष बाद ही जब बेटे रिहान का जन्म हुआ तब यूँ लगा जैसे अपना ही नया जन्म हुआ हो। सारी तकलीफ़ें जैसे उड़न छू हो गई पल भर में ही। हम दोनों खूब काम करते और जो भी मुश्किल से पैसे बचते उन्हें रिहान की परवरिश के लिए रख लेते क्योंकि अपने अंश अपने बेटे को हम एक बेहतर जीवन देंगे ये हमने एक दूसरे से वादा किया था। रिहान धीरे-धीरे बड़ा हो रहा था और हम दोनों उसके अच्छे भविष्य के लिए तत्पर। रिहान बहुत समझदार था सारी परिस्थितियों से वाकिफ़ भी था इस लिये हमेशा यही कहता कि नौकरी मिलते ही मै आप दोनों को इन सारे कष्टों से दूर रखूंगा, बहुत कर लिया आप दोनों ने अब मेरी बारी है की मै अपने मम्मी-पापा को खुशियाँ दूं।आज भी याद है वो दिन जब रिहान को पहली तन्खाह मिली थी उसने पुछा था बताओ पापा क्या दिलाऊँ आपको और मैंने कहा था, बस एक बार मुझे मेरे गाँव मेरे देश ले चलना बेटा और दूजी कोई चाह नहीं है मेरी।मेरा देश बहुत अच्छा है , वहाँ सब में आपस में बहुत प्यार है , वहाँ हर जाति-धर्म के लोग आपस में मिलकर रहते हैं और सभी एक दूसरे के त्यौहार मानते हैं ,इतना भाईचारा दुनिया में और कहीं नहीं। मुझे पावन गंगा नदी में स्नान करना है फिर एक बार महसूस करना है जैसे माँ की गोद में बैठ गए हों उस स्पर्श का अहसास आज भी कितना ममतामई है। रिहान मेरे गाँव से बस थोड़ी ही दूरी पर है जगह बक्सर। गंगा नदी वहीँ से होकर गुज़रती है और वहां पर माँ चंडी देवी का प्राचीन सिद्ध मंदिर भी है। मंदिर के ठीक नीचे अंतिम सीढ़ियों में सदा ही गंगा का जल बहता रहता है। मेरे पिता जी बताते थे की मेरा मुंडन भी वहीँ उसी मंदिर के आँगन में हुआ था और मेरे बालों को आंते की लोई में भरकर वहीँ गंगा नदी में प्रवाहित किया गया था। बक्सर के करीब 13 किलोमीटर पहले जगह पड़ती है भगवंत नगर वहां के मान हलवाई की दुकान और उसके मीठे समोसे बहुत प्रसिद्ध थे। ताज़ी गरम जलेबियाँ बरगद के पत्ते में मिलती थीं आज भी

याद है उन गरम जलेबियों की मिठास जब की उस वक्त मै 10 बरस का थ। हमारे गाँव में सब घर अपने जैसे ही थे जहाँ भूख लगे वहीँ खाना खा लो। चाचा,काका-काकी जैसे रिश्ते सिर्फ स्नेह और ममता ही बरसाते थे। रिहान मेरी पहली और अंतिम इच्छा यही होगी कि तुम मुझे मेरे गाँव मेरे देश ले चलना। अभी कोई जल्दी नहीं है पहले खूब कमाओ, जियो अपनी माँ को आराम दो अपना परिवार बसो फिर मुझे मेरी मिटटी तक ले चलना।

अपने दादा जी की डायरी पढ़ते-पढ़ते रॉबर्ट की आँखें नम हो आईं आज अचानक ही दादा जी के कमरे से उसे ये डायरी मिली थी जो उसने बड़ी उत्सुकतावश पढनी शुरू कर दी थी बिना अपने पापा रिहान की इज़ाज़त के। रॉबर्ट डायरी लेकर अपने पापा रिहान के पास जाता है। पापा आपसे बिना पूछे दादा जी की डायरी पढ़ी और मेरा मन बहुत दुखी हो गया है क्या आप दादा जी को उनके देश भारत लेकर गए थे ?

नहीं !! कहते हुए रिहान एक लम्बी सांस लेते हुए अपनी आँखें बंद कर लेता है। कुछ देर की चुप्पी के बाद रिहान कहता है मै तुम्हारे दादा जी को भारत ले जाना चाहता था किन्तु नहीं ले जा सका कई समस्याएं थीं उस वक्त और जब तक मै उनकी ये इच्छा पूरी करता वो नहीं रहे इस बात का दुःख मुझे आज तक है क्योंकि सिर्फ यही एक चीज़ मांगी थी उन्होंने मुझसे और मै नहीं दे पाया। उस वक्त तुम बहुत छोटे थे ,तुम्हारे जन्म के समय ही तुम्हारी माँ गुज़र गईं और तुम्हारा लालन पालन तुम्हारी दादी ने ही किया। उस हालत में न तो मै तुम लोगों को भारत ले जा सकता था और न ही तुम्हे छोड़कर।इसी तरह वक्त कब बीत गया पता ही नहीं चला और एक रात तुम्हारे दादा जी सोए तो फिर उस गहरी नींद से कभी नहीं उठे। तुम्हारी दादी इसी देश की थीं इस लिए भी मै बाद में भारत नहीं गया क्योंकि पिता जी की अंतिम इच्छा पूरी नहीं कर सका था इस लिए कम से कम माँ के अंतिम समय में मै उन्हें उनके देश उनकी मात्र भूमि से दूर नहीं ले जाना चाहता था। आज अच्छा लग रहा है ये जानकार रॉबर्ट कि तुम दादा जी की भावनाओं को समझ सके हो " आय एम् प्राउड ऑफ़ यू माय सन".

डैड क्या हम इण्डिया चल सकते हैं, क्या हम वहाँ चल कर दादा जी के परिवार से मिल सकते हैं ? आखिर वो हमारा भी तो है ...है ना डैड।

रॉबर्ट यहाँ तुम्हारा परिवार है ,वाइफ है दो बच्चे हैं इस हालात में तुम इंडिया जाने की कैसे सोच सकते हो जब की तुम कभी इंडिया गए भी नहीं। हाँ तुम मेरी टिकट करा दो और मै अपने पिता के देश उनके गाँव हो आता हूँ ,उन सभी तीर्थ स्थलों के दर्शन भी कर लूँगा जिनका जिक्र पापा हमेशा ही किया करते थे। वापस आकर तुम सब को ले चलूँगा जब बच्चों की भी छुट्टियां होंगीं तब ! तुम्हारा इस तरह पापा की फ्दायारी पढना इस बात का संकेत है कि पापा आज भी अपने देश के लिए तड़प रहे हैं शायद उनकी आत्मशांति तभी होगी जब मै उनके देश-गाँव हो आऊंगा। वहाँ की मिटटी के स्पर्श मात्र से तुम्हारे दादा जी को मुक्ति मिल जाएगी और शायद मुझे भी आखिर वही तो है हमारा भी देश हमारा अपना। रॉबर्ट अपने डैड रिहान की टिकट करा देता है और रिहान असंख्य सपने संजोये रखता है कदम अपने पापा की स्वप्न से भी सुन्दर दुनिया में। उसे याद है कि पापा सदा ही अपने गाँव पैसे भेजा करते थे, गाँव के अपने सभी भाई-बंधुओं के लिए और जब, वो बड़ा हुआ उसे अच्छी नौकरी मिली तब से तो उसके पापा ने हर महीने एक निश्चित रकम गाँव भेजनी शुरू कर दी थी सिर्फ यही सोचकर की घर परिवार से दूर होना मजबूरी है लेकिन घर-परिवार की पैसों से मदद करना कर्तव्य। रिहान लम्बी हवाई यात्रा के बाद इण्डिया पंहुचता है अभी सुबह के तीन बजे हैं । रखता है अपना पहला कदम देश की राजधानी दिल्ली के हवाई अड्डे पर। सोचता है मन ही मन कि क्या सच में ये उसका देश है। पूरा दिन है उसके पास क्यूँकि उसके गाँव जाने की ट्रेन रात साधे नौ बजे की है। टैक्सी वाले को रेलवे स्टेशन के पास के ही किसी होटल में चलने के लिए कहता है। सुबह-सुबह बिलकुल शांत है दिल्ली। इण्डिया गेट और राष्ट्रपति भवन देख कर खुश होता है वह की हमारा देश तो सच में बहुत सुन्दर है। होटल में पंहुचकर सोने की कोशिश तो बहुत करता है लेकिन कौतूहल उसे सोने नहीं देता। नहा-धो कर तैयार हो चल पड़ता है दिल्ली की सैर करने। होटल से ही टैक्सी तय कर ली थी पूरे दिन दिल्ली के ऐतिहासिक स्थलों और शहर के घूमने की।रिहान खुश है आज बार-बार उसे पापा याद आ रहे हैं और पापा की कहीं हजारों बातें। पूरा दिन कब गुजर गया पता ही न चला शाम हो गई। ट्रेन निश्चित समय से दो घंटे की देरी से चल रही है फिर भी रिहान जाकर पुरानी दिल्ली रेलवे स्टेशन के प्लेटफॉर्म नं. छह पर इंतज़ार करता है। करीब ढाई घंटे बाद अनाउन्समेंट होता है की अम्बाला से चलकर ऊंचाहार जाने वाली ' ऊंचाहार एक्सप्रेस ' प्लेटफॉर्म नं. छह पर आ रही है। सारा सामान ले वो झट से ट्रेन में चढ़ जाता है। ट्रेन चल पड़ती है और रिहान अपनी आँखों में असंख्य सपने संजोये याद करता है अपने पापा को। कहता है मन में 'पापा' मै आ रहा हूँ। अगली सुबह वो कानपुर स्टेशन पर उतर जाता है और वहीँ से अपने गाँव के लिए टैक्सी कर लेता है उसे पता ही नहीं की ये ट्रेन उसके गाँव के बेहद करीब से गुज़रती है। टैक्सी वाला बताता है उसे कि साहब ये गाडी तो आपके गाँव के पास से ही जाती है आप इतना पहले उतर गए हैं। रिहान फिर भी निश्चिन्त है कोई बात नहीं ,आपको मेरे गाँव का पता मालूम है ना बस आप ले चलिए फिर। मात्र एक घंटे में ही वो एक 'बक्सर' नामक जगह पर पंहुच जाता है। वहाँ एक विशाल नदी को देख कर ड्राइवर से पूछता है की ये कौन सी नदी है ? "

गंगा नदी " ड्राइवर का जवाब सुनते ही रिहान बोल पड़ता है ओ वॉव ! रोको प्लीज मैं इस पावन नदी का स्पर्श करना चाहता हूँ। रिहान बचपन से ही पापा से गंगा नदी की पवित्रता के बारे में सुनता आया था। गंगा नदी के स्पर्श में रिहन अपने पापा का स्पर्श महसूस करता है। नदी में स्नान के बाद वो प्रसिद्ध सिद्ध पीठ चंडी माता के दर्शन करता है। रिहान भावुक हो उठता है ये सोचकर की पापा कितने बेचैन रहे होंगे अपने देश अपनी मिटटी से अलग। आज वो पापा के दर्द को खुद में महसूस करता है। बक्सर से करीब 1-2 किलोमीटर बाद वो भगवंत नगर नामक एक छोटे से कस्बे में पंहुचता है यहाँ पर ड्राइवर रुककर उसके गाँव ' नरी खेड़ा ' का रास्ता पूंछता है। रिहान गाड़ी से उतर आता है सामने एक चाय की दूकान पर बैठ जाता है। काफी लोगों की भीड़ इकठ्ठा थी उस दूकान पर तभी उसकी नज़र दूकान के ऊपर लिखे उसके नाम पर जा पड़ती है ,काफी धुंधला सा दिख रहा है शायद जब दूकान खुली होगी तभी नाम लिख कर टांगा गया होगा। " मान हलवाई " नाम पढ़कर वो अचंभित हो गया और एकदम जोर से बोला मान हलवाई ! रिहान की आवाज़ सुन आस-पास के लोग उसे देखने लगे की हुआ क्या है। किसी ने बोल भी ' इसमें आश्चर्य की क्या बात है ' लगता है कोई परदेसी है ? रिहान अपना पूरा परिचय बताता है और साथ ही देश आने का उद्देश्य भी। वहाँ उपस्थित दो लोग उसे झट से गले लगा लेते हैं और कहते हैं ' अरे ,तू सरजू का बेटा है, मेरे सरजू का। मै सरजू का बड़ा भाई हूँ और ये छोटा चचेरा भाई है । रिहान की ख़ुशी

का ठिकाना नहीं रहता वो झट से दोनों के पैर छूता है। अरे चाय लाओ भाई साथ ही समोसे, पकौड़ी और गरमागरम जलेबी भी। चाय आती है सब पीते हैं और खूब जमकर खाते हैं बाद में बिल रिहान की तरफ बढा दिया जता है। ये कैसा आतिथ्य? रिहान बिल के पैसे देते हुए सोचता है। रिहान कहता है कि 'घर चलें काका' सुनते ही काका कहते हैं हाँ क्यों नहीं बेटा फिर तुरंत ही बोल पड़ते हैं कि कुछ पैसे चाहिए हमे। हमारे पास तो वैसे भी कुछ है ही नहीं। सरजू तो कमाने गया और फिर लौटा ही नही भूल गया हम सबको,कभी एक पैसा तक न भेजा उसने। ये सुनकर रिहान दंग रह गया क्योंकि जब से वो बड़ा हुआ था वो खुद ही पैसा भेजता था इन सबके नाम से ,फिर ये झूठ क्यों बोल रहे हैं ? आधा दिन बीत गया उसी दुकान पर लेकिन किसी ने रिहान को घर या गाँव चलने के लिए नहीं कहा बल्कि तब तक कुछ और लोग उसके आने की खबर पाकर वहीँ आ गए और अपना -अपना रोना रोने लगे कि अब तुम आ गए हो बेटा तो तुम ही कुछ करो जब इतना कमाया है तो वो अपनों के लिए ही ना।हम सब बेहद गरीब हैं या तो हमारी पैसों से मदद कर दो या फिर अपने ही साथ ले चलो।

सरजू तो कभी आया नहीं और हम बस जिम्मेदारियों के नीचे दबते चले गए। अब जो तुमने हमारी मदद न की तो क्या यहाँ हमारी गरीबी का मजाक बनाने आये हो। रिहान को कुछ समझ नहीं आ रहा था एक पल को उसे ऐसा लगा जैसे उसकी सोचने समझ पाने की कोई शक्ति कहीं चली ही गई है कि ये सब क्या कह रहे हैं जबकि उसके पापा ने तो ख़त के ज़रिये अपनी सारी ज़मीन तक इन्ही भाइयों के नाम कर दी थी और हमेशा ही इन्हें पैसे भेजते रहे फिर ये लोग उल्टा हमसे पैसे क्यों मांग रहे हैं, देखने में तो कोई भी निर्धन नहीं लग रहा है। दुकान पर बैठे -बैठे शाम होने को आई लेकिन न ही किसी ने उससे खाने को पूछा और न ही गाँव चलने को कहा बल्कि सब के सब किसी भूखे गिद्ध की तरह उससे पैसे ही मांगते रहे और अपनी लाचारियाँ जताते रहे बल्कि उससे ज्यादा उसके सूटकेस पर सभी की नज़रें जमीं रहीं। अँधेरा घिरने लगा और वो सब एक साथ उठ खड़े हुए कि अच्छा अब चलते हैं , रिहान भी उठा कि हाँ चलिए मैं भी बहुत थक गया हूँ तभी काका बोले बेटा तुम कहाँ चलोगे तुम यहीं कहीं अपना इंतजाम कर लो हमारे घर तो बहुत छोटे हैं और हम सब तो जमीन पर ही सोते हैं कोई खाट या बिस्तर नहीं है हमारे पास या तो कुछ पैसे दे दो तो हम तुम्हारे लिए बिस्तर खरीद लें। अब तक रिहान को समझ आ गया कि ये सब लालची हैं और उसने तुरंत कहा नहीं काका आप सब जाओ मैं आज यही रुक जाऊँगा कल मिलेंगे फिर आप सभी से। पैसे तो मैं भी लेकर नहीं आया कल सुबह बैंक से निकालूँगा, आज की रात यहीं कहीं गुजार लूँगा। कल आप के साथ गाँव चलूँगा। ठीक है बेटा अब तुम आराम करो हम कल सुबह ही आ जायेंगे। सभी चले जाते हैं और रिहान वहीँ बैठा रहता है जब तक दुकान बंद नहीं हो जाती है। रात हो गई साहब चलना नहीं है ? ड्राइवर की आवाज़ से रिहान की खामोशी टूटती है। चलना है लेकिन पहले कहीं खाना खा लेते हैं जोर की भूख लगी है।

ड्राइवर एक ढाबे पर रोकता है तो रिहान कहता है कि भूख ही नहीं है,लेकिन साहब आपने ही तो कहा था की भूख लगी है। हाँ, क्योंकि तुम्हे भूख लगी होगी कुछ खा लो फिर चलना है। ड्राइवर खाना खाता है और रिहान अपने गले में पापा के रुन्धते -अटकते शब्दों को निगलने की कोशिश करता है। चलें साहब मैंने खा लिया, किधर रिहान के मुंह से निकलता है। मैंने आपके गाँव नरीखेड़ा का रास्ता समझ लिया था दिन में ही कहते हुए ड्राइवर गाड़ी स्टार्ट करता है और सीधा नरी खेड़ा गाँव पंहुचता है। गाँव के ठीक बाहर ही रिहान गाड़ी रोकने को कहता है। तुम यहीं रुको मैं जरा गाँव के अन्दर हो कर आता हूँ। पूरे दिन का नजारा देख कर ड्राइवर भी इतना तो समझ ही चुका था कि साहब क्या देखने पैदल जा रहे हैं इस लिए उसने बस यही कहा हाँ ठीक है साहब वैसे भी खाने के बाद मुझे नींद आती है तब तक एक नींद मार लेता हूँ। रिहान के लिए ये गाँव क्या देश ही नया था फिर भी अपने पापा की नज़रों से उसने गाँव को अपने बेहद करीब महसूस किया था। एक गाँव वाले से सरजू के घर का पता पूछता है और घर के बाहर पंहुच कर हतप्रभ रह जाता है।एक आलीशान घर के बाहर दो जीप खड़ीं थीं,नौकर -चाकर घूम रहे थे। बाहर ही दो खाट पड़ी थीं और चार-पांच कुर्सियां भी साथ ही एक लकड़ी की बेंच भी।
तभी ठीक किनारे थोडा दूर उसकी नज़र पड़ी एक काफी मोटे से नीम के पेड़ पर जिसे वो हमेशा ही पापा से सुनता आया था कि पापा का बचपन उसी के साथ बीता था वो वहीँ बैठ जाता है सट कर नीम के पेड़ से अँधेरा होने की वजह से किसी की नज़र उस पर नहीं पड़ती। रिहान के कानों में आवाज़ पड़ती है कि आज तो बच गए अगर वो गाँव आ जाता तो तो हमारे ठाट -बाट देखकर अगले ही महीने से हमे रकम भेजना बंद कर देता सरजू अपने परिवार के साथ बैठा बात कर रहा था।सभी जोर-जोर से हँसे फिर कोई बोला सरजू काका ये सोने का अंडा देने वाली मुर्गी है कल जितना हो सके निकलवा लीजियेगा।

अरे तू चिंता मत कर बेटे इसके बाप ने भी जीवन भर हमे पैसे भेजे हैं यही सोचकर कि हम यहाँ बहुत गरीबी में हैं और अब ये भी भेजता रहेगा। कल ही किसी बहाने से मोटी रकम निकलवा लूँगा बैंक, से सरजू बोला । ये सब सुन कर रिहान सन्न रह गया वहीँ हांथों से नीम के पेड़ के नीचे की थोड़ी नम सी मिटटी को निकाल कर मुठ्ठी में लिया और वहां से चला गया। टैक्सी में बैठते ही बोला सीधे कानपुर चलो अभी। रात कानपुर के एक होटल में गुजारी और अगले ही दिन दिल्ली और फिर वहां से पहली फ्लाईट ले सीधे सूरीनाम के लिए उड़ गया। सूरीनाम में उतर कर पहली बार उसे ये ज़मीन अपनी लगी उसे लगा कि उसके पैरों तले ज़मीन है।अचानक रिहान को घर पर देख सभी अचम्भित रह जाते हैं साथ ही घबराए हुए से उसकी खैरियत पूछते हैं।बहुत थक हूँ अभी ,कह कर वो अपने कमरे में चला जाता है और सो जाता है। अगले दिन सुबह रॉबर्ट पूछता है डैड क्या हुआ ? आप बहुत परेशान लग रहे हैं और इतनी जल्दी वापस कैसे आ गए सब ठीक तो है? प्लीज बताइए, कैसा है दादा जी का गाँव बल्कि इण्डिया कैसा है, कौन-कौन मिला आपको ,सब कैसे हैं वहाँ पर ...रिहान बिल्कुल चुप था फिर थोड़ी देर बाद बोल 'पापा के गाँव में अब कोई नहीं रहा। आस -पास के गाँव वालों से पूछने पर पता चला कि कई वर्षों पहले वहाँ प्लेग फैला था और एक महामारी की तरह पूरा गाँव उसकी चपेट में आ गया। रॉबर्ट इण्डिया अपना देश है और जैसा पापा ने बताया था उससे भी अधिक नया लगा मुझे लेकिन पापा का गाँव और उसका नामों निशाँ नहीं है अब। ओह ! कहकर रॉबर्ट ऑफिस चला जाता है रिहान अपने पैंट की जेब में पड़ी नीम के पेड़ के नीचे की मिटटी निकलता है और घर के बाहर के अपने छोटे से लॉन में उडा देता है ये कहते हुए "पापा आपके घर आपके देश की मिट्टी अब यहीं है और सदा यहीं रहेगी आपके साथ"।

❁

आलेख

षडयंत्रों का शिकार है हिन्दी

- हिमकर श्याम

5, टैगोर हिल रोड, निकट रिलायंस फ्रेश, मोराबादी, रांची. (झारखण्ड) पिन कोड : 834008.

राष्ट्रभाषा होने के बावजूद हिंदी षड्यंत्रों का शिकार रही है। स्वाधीनता के बाद से हमारे देश में, हिंदी के खिलाफ षड्यंत्र रचे जाते रहे हैं। उन्ही का परिणाम है कि हिंदी आजतक अपना अनिवार्य स्थान नहीं पा सकी है। हम अपनी मानसिक गुलामी की वजह से यह मान बैठे हैं कि अंग्रेजी के बिना हमारा काम नहीं चल सकता। अंग्रेजी के नाम पर जितनी अनदेखी और दुर्गति हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं की हुई है उतनी शायद ही कहीं भी किसी और देश में हुई हो। अंग्रेजों के समय अंग्रेजी भाषा की जितनी महत्ता थी, उससे अधिक आज है। अपने ही देश में हिंदी मातहत भाषा बन गयी है।

किसी भी स्वाधीन राष्ट्र में उसकी राष्ट्रभाषा इतने समय तक उपेक्षित नहीं रही है। आजादी के साढ़े छह दशक बीत जाने के बाद भी हमारी सरकारी सोच पर अंग्रेजी हावी है। तुर्की जब आजाद हुआ तो एक हफ्ते में वह विदेशी भाषा के चंगुल से मुक्त हो गया था। मुस्तफा कमाल पाशा की इच्छाशक्ति ने अविश्सनीय समय में तुर्की को राष्ट्रभाषा बना दिया। मुस्तफा कमाल पाशा का मानना था कि राष्ट्र निर्माण के लिए पहली आवश्यकता यह है कि अंग्रेजी के स्थान पर तुर्की भाषा को राष्ट्रभाषा बनाया जाए। इससे ठीक उलट 15 अगस्त 1947 की आधी रात को भारत के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने इस देश के 30 करोड़ लोगों को अंग्रेजी में संबोधित किया। उसी दिन यह तय हो गया था कि देश उस भाषा में चलेगा, जिस भाषा में नेहरू सोचते हैं। नेहरू के अंग्रेजी प्रेम की वजह से राजकाज में हिंदी का उपयोग शुरू नहीं हो सका। नेहरू के विचार में राजव्यवहार के लिए अंग्रेजी अनिवार्य थी। बाद की सरकारें इसी नजरिये से सोचती रहीं। शासन की ज़िम्मेवारी संभालनेवालों ने षड्यंत्र के तहत अंग्रेजी को तवज्जो देना शुरू किया और यह धीरे-धीरे व्यापक रूप लेता गया, जिसका नतीजा यह हुआ कि राष्ट्रीयता और राष्ट्रभाषा की सोच पीछे छूट गयी। हमारी राष्ट्रभाषा लगातार कमजोर पड़ती गयी।

यह दुर्भाग्य है कि अपनी राष्ट्रभाषा के प्रति सम्मान का एक स्वर सुनाई नहीं दे रहा है। राष्ट्रभाषा से लगाव या उसपर गौरव करना तो अपराध करने जैसा प्रतीत होता है। कैसा अजब लगता है कि अपने ही देश में अपनी भाषा के लिए जब आवाज कोई उठाता है तो उसकी आवाज को दबाने की कोशिश की जाती है। अपनी भाषा के पक्ष में बोलनेवालों की आलोचना होती है। उसकी सोच को मध्यकालीन करार दिया जाता है। अपनी राष्ट्रभाषा के सम्मान के लिए जब कोई धरने पर बैठता है तो पुलिस उसे गिरफ्तार कर लेती है। उसे परेशान किया जाता है। उल्लेखनीय है कि श्यामरूद्र पाठक हिंदी भाषा में न्याय के लिए कई वर्षो से लड़ाई लड़ रहे हैं और चार दिसंबर, 2012 से कांग्रेस मुख्यालय के सामने धरना दे रहे थे। 16 जुलाई, 2013 की शाम धरना के दौरान उन्हें गिरफ्तार कर तिहाड़ जेल भेज दिया गया था। 25 जुलाई को उन्हें इस शर्त पर रिहा किया गया कि वह कांग्रेस मुख्यालय के सामने धरना नहीं देंगे। श्यामरूद्र पाठक की मांग है कि सर्वोच्च न्यायालय और देश के 17 उच्च न्यायालयों में अंग्रेजी की अनिवार्यता समाप्त कर भारतीय भाषाओं में भी बहस व न्यायिक प्रक्रिया होनी चाहिए। उनकी यह मांग जायज भी है। ज्यादातर उच्च न्यायालयों में अभी अंग्रेजी में ही काम होता है। श्याम रूद्र पाठक इसे बदलना चाहते हैं। उनका कहना है कि अगर कार्यवाही हिंदी में होगी तो आम लोग भी जान सकेंगे कि उनके वकील ने क्या दलील दी और अदालत ने उस पर वास्तव में क्या कहा। यह बेहद शर्मनाक है कि उनकी मांग पर कार्रवाई करने की बजाय उन्हें गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया गया। क्या भारतीय भाषाओं में न्यायिक कामकाज की पैरवी अपराध है? क्या दुनिया में दूसरा कोई ऐसा उदाहरण होगा ? क्या यह हमारे मौलिक अधिकारों का हनन नहीं?

लोकभाषा को महत्व दिए बिना लोकतंत्र मजबूत नहीं हो सकता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था का कोई भी अंग संतोषजनक ढंग से तब तक काम नहीं कर सकता जब तक की उसकी भाषा लोकभाषा के अनुरूप नहीं हो। न्यायपालिका लोकतंत्र का महत्वपूर्ण अंग है। विडंबना है कि न्यायालयों में हिंदी को मान्यता देने की दिशा में कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया है। राज्यभाषा पर संसदीय समिति ने वर्ष 1958 में यह अनुशंसा की थी कि उच्चतम न्यायालय में कार्यवाहियों की भाषा हिंदी होनी चाहिए। लेकिन देश के न्यायालयों की कार्यवाहियां अंग्रेजी भाषा में ही संपन्न होती रही। संविधान के भाषा संबंधित नीति में कहा गया है कि जब तक हिंदीत्तर क्षेत्रों की तीन-चैथाई सदस्य एकमत से हिंदी स्वीकार नहीं करते तब तक अंग्रेज चलती रहेगी। संविधान के अनुच्छेद 348 में यह कहा गया है कि संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक उच्चतम न्यायालय और प्रत्येक उच्च न्यायालय में सभी कार्यवाहियां अंग्रेजी भाषा में होगी।

भाषा का प्रश्न मानवीय है खासकर भारत में जहाँ साम्राज्यवादी भाषा जनता को जनतंत्र से अलग कर रही है। तमाम भारतीयों का सपना था कि आजादी के बाद लोक-व्यवहार और राजकाज में भारतीय भाषाओं का प्रयोग होगा। दुर्भाग्यवश यह सपना कभी सच नहीं हो पाया। आज़ादी के बाद संविधान बनाने का उपक्रम शुरू हुआ। संविधान का प्रारूप अंग्रेजी में बना, संविधान की बहस अधिकांशतः अंग्रेजी में हुई। यहाँ तक कि हिंदी के अधिकांश पक्षधर भी अंग्रेजी

भाषा में ही बोले। अगर हिंदी को लेकर हमारे संविधान निर्माता संजीदा होते तो हिंदी की यह हालत नहीं होती। साधनविहीन जन की भाषा अंग्रेजी न तो पहले थी और न अब है। करोड़ों लोगों के देश में अंग्रेजी न जनभाषा हो सकती है और न राजभाषा। विभिन्न रूपों में यह स्थान हिंदी को ही लेना है।

हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा हासिल करने के लिए लंबा संघर्ष करना पड़ा। यह दर्जा भी केवल कागजों तक ही सीमित रहा। आज भी यह सवाल अनुतरित है कि भारत की राष्ट्रभाषा क्या है? गुजरात उच्च न्यायालय के अनुसार ऐसा कोई प्रावधान या आदेश रिकार्ड में मौजूद नहीं है जिसमें हिंदी को राष्ट्रभाषा घोषित किया गया हो। हिंदी मातृभाषा है, राजभाषा है अथवा संपर्क भाषा, इस पर चर्चा हमेशा से होती रही है। वर्ष 1965 में संसद द्वारा हिंदी राजभाषा अधिनियम पारित किया गया था। तभी से हिंदी को सिर्फ राजभाषा का दर्जा हासिल है, लेकिन राष्ट्रभाषा का नहीं। आज भी प्रशासन और न्यायालय हिंदी में नहीं चलते। हर क्षेत्र में अंग्रेजी का वर्चस्व है। सरकारी दफ्तरों में अधिकतर कार्य अंग्रेजी में ही किया जाता है। घर से लेकर रोजगार और शिक्षा हर जगह हिंदी की उपेक्षा की जा रही है। जब तक अंग्रेजी का वर्चस्व रहेगा हिंदी का बढ़ना मुश्किल है। हमें अंग्रेजी का वर्चस्व समाप्त करना होगा। करोड़ों लोगों की भाषा शासन और न्याय की भाषा क्यों नहीं बन सकती है?

हिंदी के प्रचार-प्रसार की चेष्टा तो बहुत की गयी, पर वह ठीक तरह से किया गया है यह कहना संशयात्मक है। जो सत्ता के केंद्र में हैं, व्यवस्था के अंग हैं या सामाजिक स्तर से मजबूत हैं वे अपनी दुनिया में डूबे हुए हैं। ऐसी कोई पार्टी नहीं है जो हिंदी के प्रश्न पर डटी रहे और हिंदी के लिए लड़ती हुई दिखाई दे। लोकतंत्र के महत्वपूर्ण अंग विधायिका में हिंदी समेत अन्य भारतीय भाषाओं की हालत पर कभी बहस नहीं होती है। इस मुद्दे पर हिंदी भाषी प्रदेशों का प्रतिनिधित्व करनेवाले नेताओं की उदासीनता शर्मनाक ही कही जा सकती है। देश की संसद में अभी तक हिंदी को वह दरजा नहीं मिल सका है जो एक राष्ट्रभाषा को मिलना चाहिये। संसद में हिंदीभाषियों का दबदबा कम हो रहा है। संसद में अधिकतर सदस्य अंग्रेजी में ही प्रश्न पूछते हैं व बहस करते हैं। हमारे देश में अंग्रेजी ऐसी विभाजन रेखा है, जो तय करती है कि किसी को जिंदगी में कैसा कैरियर और सुख-सुविधाएं मिलेंगी। अंग्रेजी बोलना-लिखना-पढ़ना समाज में बेहतर स्थिति और रोजगार की बहुत बड़ी योग्यता है। ज्ञान-विज्ञान, शिक्षा, राजनीति, शासन, पत्रकारिता जैसे क्षेत्रों में अंग्रेजी जाननेवालों का अधिकारयुक्त स्थान है।

हिंदी किसी भी दृष्टिकोण से किसी भाषा से हीन नहीं है। हिंदी तो वह समर्थ भाषा है, जो पूरे देश को एक प्रेम के धागे से जोड़ सकती है। हिंदी विश्व में सर्वाधिक बोली जानेवाली तीसरी सबसे बड़ी भाषा है। राजनीतिज्ञ और नीति निर्माता हिंदी के जिस महत्व को नहीं समझ पाये, बाजार ने फौरन समझ लिया। हिंदी आज बाजार की भाषा बन गयी है। एक ऐसी भाषा जिसके सहारे करोड़ो लोगों को बाजार द्वारा रोज नये सपने दिखाये जाते हैं। उदारीकरण के बाद जब बाजार का विस्तार हुआ तो विदेशी कंपनियां और विदेशी निवेशक अपने-अपने उत्पादों के साथ भारत पहुंचे। यहां के बाजार के सर्वे और शोध के बाद उन्हें यह महसूस हुआ कि भारतीय उपभोक्ताओं तक पहुंचने के लिए उनकी भाषा का उपयोग करना फायदेमंद हो सकता है। हिंदी को अपनाना बाजार की मजबूरी भी थी। देश में हिंदी बोलने, और समझनेवालों की संख्या सर्वाधिक है। बाजार ने हिंदी जाननेवालों को बाकी दुनिया से जुड़ने के नये विकल्प खोल दिये हैं। फिल्म, टी.वी., विज्ञापन और समाचार हर जगह हिंदी का वर्चस्व है। इंटरनेट और मोबाइल ने हिंदी को और विस्तार दिया। हिंदी बढ़ रही है लेकिन इसके सरोकार लगातार घट रहे हैं। जब हिंदी बाजार की भाषा हो सकती है तो रोजगार, शिक्षा और लोकव्यवहार की भाषा क्यों नहीं ?

यह समझ से परे है कि हमारे देश में अंग्रेजी को इतना महत्व क्यों दिया जा रहा है। दुनिया के 25 से भी कम देशों की राष्ट्रभाषा अंग्रेजी है। दुनिया के लगभग सारे मुख्य विकसित व विकासशील देशों में वहाँ का काम उनकी भाषाओं में ही होता है। अधिकांश देशों में दूसरे देशों के साथ आर्थिक-व्यापारिक सौदों के लिए मूल पाठ अंग्रेजी में नही बनाया जाता है तथा वार्ताओं में भी वे अपनी ही भाषा बोलना पसंद करते हैं। अनेक देशों के राजनेता अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर अपनी मातृभाषा का ही इस्तेमाल करते हैं। जापानियों, चीनियों, कोरियनों का अपनी भाषा के प्रति गजब का सम्मान और लगाव है। बिना अंग्रेजी के इस्तेमाल के ऐसे देश विकास के दौड़ में कई देशों से काफी आगे हैं। फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश आदि भाषाओं ने कभी अंग्रेजी के सामने समर्पण नहीं किया। हिंदी समाज को इनसे सीख लेने की जरूरत है।

अंग्रेजों ने हिंदी की ताकत को भली भांति भांप लिया था। स्वाधीनता संग्राम के दौरान हिंदी भाषा एक ताकत बन कर उभरी। अंग्रेजों को यह महसूस हो गया था कि अगर हिंदी मजबूत हुई तो हिंदुस्तान एक मजबूत राष्ट्र के रूप में उभरेगा और दुनिया की मजबूत ताकतों को चुनौती देने की स्थिति में आ जाएगा। इसलिए उन्होंने हिंदी को दिन-ब-दिन कमजोर करने की एक लंबा षड्यंत्र रच डाला। अंग्रेजों की इस नीति का लक्ष्य था संस्कृत, फारसी तथा लोक भाषाओं के वर्चस्व को तोड़कर अंग्रेजी का वर्चस्व कायम करना। साथ ही सरकार चलाने के लिए देशी अंग्रेजों को तैयार करना। मैकाले ने भारतीय भाषाओं को दीन-हीन और दरिद्र कह कर अंग्रेजी की स्थापना की थी। उसका मंतव्य यह था कि इससे आगे चलकर एक ऐसा वर्ग तैयार होगा जो रंग और खून से तो हिन्दुस्तानी होगा, किंतु उसकी रूचि, मति, बुद्धि और भाषा अंग्रेज की होगी। मैकाले की इस नीति का असर स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है। अंग्रेजी के वर्चस्व से भारत में एक ऐसा वर्ग तैयार हुआ जो भारतीय होते हुए भी अभारतीय रहा।

स्वतंत्रता के बाद हिंदी के प्रति व्यापक उपेक्षा और तिरस्कार का भाव विकसित हुआ। देश में हिंदी के विरुद्ध षड्यंत्र कई स्तरों पर चलाये गये। एक तो हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में व्यवहृत करने का प्रयास नहीं किया गया साथ ही यह तर्क भी दिया गया कि हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने से देश की एकता को खतरा है। राष्ट्रभाषा के प्रति जो भावात्मक लगाव होना चाहिये उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया। स्वातंत्र्योतर युग में जिसे नेहरु युग भी कहा जाता है भाषावार प्रांत बना कर प्रांतीयता को बढ़ावा दिया गया। यह बताने कि कोशिश की गयी कि क्षेत्रीय भाषाओं के उन्नति की राह में हिंदी सबसे बड़ी बाधा है। इससे क्षेत्रीय भाषा के संरक्षण की चिंता सर्वोपरी हो गयी। राष्ट्रीयता की भावना कमजोर हुई और राष्ट्रभाषा के प्रति जो मोह होना चाहिए वह पीछे छूट गया। क्षेत्रीय भाषाओं को यदि किसी से विरोध होना चाहिये तो अंग्रेजी से होना चाहिए। अंग्रेजी न सिर्फ हिंदी के लिए, बल्कि अन्य भारतीय भाषाओं के विकास में रोड़ा बनी हुई है। दुर्भाग्य है कि हिंदी को क्षेत्रीय भाषाओँ का दुश्मन मान लिया गया है। हिंदी जोड़नेवाली भाषा रही है, तोड़नेवाली भाषा कभी नहीं रही। हिंदी सबको अपनाती रही है, सबका यथोचित स्वागत करती रही है। किसी भी भाषा के शब्द को अपने अंदर समाहित करने में गुरेज नहीं किया।

अंग्रेजी, अरबी, फारसी, तुर्की, फ्रांसीसी, पोर्चुगीज आदि विदेशी शब्द हिंदी की शब्दकोश में मिल जायेंगे। जो भी इसके समीप आया सबको गले से लगाया, जबकि अंग्रेजी सदैव वर्ग-विभेद का एक माध्यम रही। आज भी हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में आपसी विवाद खड़ा कर अंग्रेजी को बढावा दिया जा रहा है। यह किसी भी दृष्टिकोण से सही नहीं है। हमें ऐसे षड्यंत्रकारियों से सावधान रहना चाहिए।

हिंदी की दुर्दशा के लिए हिंदी समाज भी बहुद हद तक जिम्मेवार है। एक तरफ तो सभी स्वीकार करते हैं कि हिंदी संपर्क भाषा, राजभाषा या राष्ट्रभाषा होने लायक है पर व्यवहार में इसे कोई नहीं अपनाता है। अपनी मातृभाषा की उपेक्षा करना किसी समाज के लिए अच्छा नहीं होता। समाज का एक बड़ा हिस्सा, खासतौर पर शहरी मध्यवर्ग, अपनी भाषा के प्रति अवमानना नहीं, तो उपेक्षा की भावना जरूर रखता है। इसकी एक वजह यह समझ है कि अंग्रेजी एक अंतर्राष्ट्रीय भाषा है, जो नयी पीढ़ी के लिए बेहतर भविष्य की गारंटी है। यह तर्क गले से नहीं उतरता कि अपनी मातृभाषा या राष्ट्रभाषा के मुकाबले में किसी विदेशी भाषा से हमारा जीवन बेहतर हो सकता है। कोई भी भाषा सीखना और समझना बुरा नहीं है लेकिन अपनी मातृभाषा को हेय दृष्टि से देखना ठीक नहीं है। हम अपनी मातृभाषा में बात करना अपना अपमान समझते हैं। अपनी भाषा के प्रति यह भाव ही अंग्रेजी को पनपने और अपना साम्राज्य स्थापित करने का मौका देता है।

सामाजिक सक्रियता किसी भी भाषा के लिए एक अनिवार्य शर्त है जिसे हिंदीभाषियों ने पूरी तरह से भुला दिया है। हिंदी समाज ने यह मान लिया है कि राजभाषा होने के बाद ही हिंदी की सारी समस्या सुलझ गयी है। विडंबना है कि हिंदी को वह जगह नहीं मिल रही है, जिसकी वह हकदार है। हिंदी न तो संवैधानिक रूप से राष्ट्रभाषा बन पायी और न ही पूरी तरह से राजभाषा। हिंदी के संस्कारों और उसकी समृद्ध परंपरा को बचाए रखना बड़ी चुनौती है। बिना भारतीय भाषाओं के भारतीय संस्कृति ज़िंदा नहीं रह सकती। भारतीय सभ्यता और संस्कृति में हिंदी की जड़ें काफी गहरी हैं। अगर हिंदी को बचाना है तो यह जरुरी है कि शासकीय कामकाज और न्यायालयों में हिंदी को महत्व दिया जाये और इसे शिक्षा और रोजगार से जोड़ा जाये।

❁

सहाय

श्री केतन मेहता की ओर से 'विश्वगाथा' त्रैमासिक पत्रिका के लिए Rs 5000 / - (पाँच हज़ार पूरे) आर्थिक सहाय के रूप में मिले हैं | हम उनके ह्रदय से आभारी हैं |

- संपादक

Mr. Kaitan Mehta :
Mbuji-Mayi,
Democratic Republic of the Congo

लघुकथा

अनाथ

- संजय गिरी

Mb. No. 9871021856

एक बार मुझे कुछ बदमाशों ने चाकू मार दिया, मैं अचेत पड़ा था | लोग आ -जा रहे थे मगर किसी को भी इतना वक्त नहीं था कि मुझे देख सकें | हॉस्पिटल पहुंचा सकें, इतने मै ही मैंने देखा कि एक अत्यंत सामान्य व्यक्ति मेरे पास आएं | उम्र लगभग पचपन-पचपन के आसपास | उन्हों ने मुझे उठाने के लिए अपनी पूरी ताकत झोंक दी |

हॉस्पिटल पहुँचकर उन्हों ने मुझे आपातकालीन वार्ड में भर्ती करवा दिया | मेरी देखभाल के लिए रातभर रुके | सुबह होते ही वह मेरे लिए चाय और बिस्कुट ले आएं और बोले; "लो बेटा, "नाश्ता कर लो |"

जब उनके मुँह से 'बेटा' शब्द सुनते ही मेरी आँखों से आँसूं बहने लगे | आजतक मुझ अनाथ को किसी ने भी बेटा कह कर नहीं बुलाया था, मेरे बहते हुए आँसूंओं को देख कर उन्हों ने कहा; "बेटा, रोते क्यों हो ? दर्द ज्यादा हो रहा है क्या? रुको, मैं डॉक्टर को बुलाता हूँ |"

मैंने उन्हें रोकते हुए कहा; "नहीं बाबा, ये दर्द मेरे ज़ख्मों का नहीं, ज़माने ने दिए तानें व गलियों का हैं | आज तक किसी ने भी मुझे बेटा कह कर नहीं पुकारा, सभी ने मुझे कभी छोटू, छोकरे, लोंडे या हरामी के नाम से पुकारा था, आप ही वो पहले शख्स हैं जिन्हों ने मुझे बेटा कहा |"

मेरी बात सुनकर वो मुझे गले लग कर रो पड़े | फिर बोले; "बेटा मैं भी तुम्हारी ही तरह अनाथ हूँ मेरा भी इस दुनिया में कोई नहीं हें |"

हम दोनों ने अब एक दूसरे को सम्भाला और हॉस्पिटल से छुट्टी लेकर अपने गंतव्य कि और चल पड़े | एक दूसरे कि बांह पकडे हुए...

अब हम अनाथ नहीं हैं | हमारे बीच एक नया रिश्ता बन चुका है - पिता और पुत्र का !

❁

संशोधन पेपर

हरिवंश राय बच्चन के काव्य में प्रगतिशील चिंतन

- डॉ. आलोक शर्मा

हरिवंश राय बच्चन ने अपने काव्य में गतिशीलता और सक्रियता की मनोवृत्ति को उभारने का प्रयास किया है। निष्क्रियता, अगति और शैथिल्य की यथा संभव दूर करने की प्रवृति बच्चन के काव्य में दृष्टिगोचर होती है। प्रगतिशील चिन्तन के अन्तर्गत एक ओर तो पथ की बाधाओं से निर्भय रहने की मनोवृत्ति झलकती है और दूसरी और इनसे संघर्ष कर आगे बढ़ने की आकांक्षा उपलब्ध होती है। बच्चन के प्रगतिशील चिन्तन के सन्दर्भ में शंभुनाथ चतुर्वेदी ने कहा कि-"पथ के विविध व्यवधान उनके विश्वास और गति मोह को नहीं डिगा पाते। अविराम गति से संचालित व्यक्ति की निर्भयता और अवरोधों के प्रति उदासीनता किसी महान् संबल का संकेत करती हैं। बच्चन ने इस प्रवृत्ति का प्रकाशन ऐसे प्रसंग के माध्यम से किया है जो निर्भय पंथी के साहस, संबल और पथ व्यवधान की उदासीनता के प्रति एक जिज्ञासा उत्पन्न करता है।" बच्चन के प्रगतिशील चिन्तन के सन्दर्भ में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने लिखा है कि-"बच्चन के साहित्यिक जीवन का आरम्भ विद्रोह से होता है। उनकी

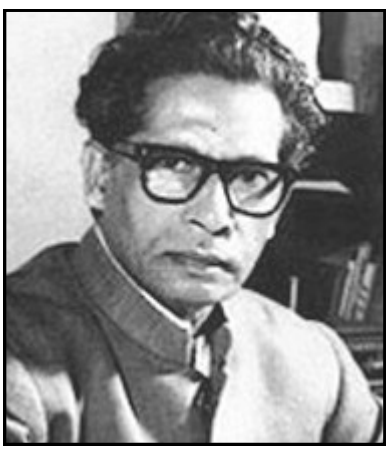

हालावादी रचनाएँ विद्रोह और नवजीवन के आग्रह के रूप में ग्रहण की जानी चाहिए।" 1

डॉ. नवल किशोर भाभड़ा ने लिखा है कि - "कवि ने सामाजिक युग जीवन की विदूरपताओं, मूल्य-विघटन और बदलते मानवीय संबंधो के यथार्थ के अपने अनुभवों और आसन्न वार्धक्य का एहसास कर अपने जीवन की परिवर्तनशील स्थितियों एवं प्रौढ़ आत्मविष्लेषण की अनुभूतियों को अपने परवर्ती काव्य में आबद्ध किया है।"2

बच्चन के काव्य संग्रह विश्लेषण करे तो मधुशाला, मधुबाला, मधुकलश, निशा-निमत्त्रण, एकान्त संगीत, आकूल अन्तर, सन्तरगिणी, हला-हल, बंगाल का काल, सुत की माला, मिलन यामनी, प्रणय पत्रिका, धार के इधर-उधर, आरती ओर अंगारे, त्रिभगिभा, बुध ओर नवाचार, दो चटटाने, बहुत दिन बीते, कटती प्रतिमाओं की आवाज, उभरते प्रतिमानो के रूप, जाल समेटा, अतीत के प्रतिध्वनियाँ, असंलकलित कविताएं, प्रारम्भिक कविताएं, मे संकलित मधुशाला, मधुपयी, एक प्रार्थना, निषा निमंन्त्रण, कुध्र युवा बनाम व्रद्, प्याला, अक्लबद्व इशारा, आगे हिम्मत करके आओ, हम कब अपनी बात छिपाते, मे हारा नहीं जीवन में, प्रतिध्वनि, नया पुराना, कूकडू कूँ चलता रास्ता, आधुनिक निन्दक, पाञ्चजन्य बंगाल का काल कविताओं के माध्यम से सामाजिक जीवन की विद्रूपताओं,विसगतियों, सामाजिक एंव सांस्कृतिक मूल्य विघटन, का यथार्थ रूप से चित्रण कर विद्रोह व्यक्त किया साथ-साथ जनसमाज एवं देश में मानवता, देश की एकता, कर्मवादी, श्रमवादी एवं नवीन नैतिक मूल्यों को अपनाकर वसुधैव कुटुम्बकम् एवं विश्व कल्याण की कामना का प्रसार किया जो कि उनके प्रगतिशील चिन्तन को व्यक्त करता है।

"सूर्य बने मधु का विक्रेता,
सिंधु बने घट, जल हाला,
बादल बन-बन आए साकी,
भूमि बने मधु का प्याला,' 3.

बच्चन ने विश्व को 'मधुशाला' रूप में प्रस्तुत किया जहाँ सभी मतभेद भूला कर सिर्फ प्रेम और कल्याण-विश्व कल्याण की कामना की गई है-

"तारक मणियों से सज्जित नभ
बन जाए मधु का प्याला,
सीधा करके नभ दी जाए
उसमें सागर-जल हाला,
मा समीरण साकी बनकर
अधरों पर छलका जाए,
फैलें हों जो सागर तट-से;
विश्व बने यह मधुशाला।" 4

बच्चन जी ने लिखा है कि मदिरालय अनेकता में एकता की भावना स्थापित करती हैं, मदिरालय में राजा-रंक, धनी-गरीब, उँच-नीच, छोटा-बड़ा का भेद-भाव नहीं होता है। मधुशाला मानव मन के मालिन्य को दूर करती हैं। मंदिर-मस्जिद, समाज, धर्म सब जगह जातिवाद, वर्णभेद आदि किये जाते है किन्तु मधुशाला में सब समान होते फिर यह इन सब से श्रेष्ठ क्यों नहीं है? अर्थात् मधुशाला श्रेष्ठ है। यही कारण है कि कवि ने मधुषाला को साम्यवाद का प्रथम प्रचारक के रूप में स्वीकार किया है, वे लिखते हैं-

"रंक-राव में भेद हुआ है
कभी नहीं मदिरालय में,
साम्यवाद की प्रथम प्रचारक
है यह मेरी मधुशाला।"5

उन्होंने अपने काव्य में स्पष्ट किया कि सदियों से विश्व को स्वर्ग-नरक का भय दिखाकर बहलाया गया मगर आज तक किसी ने भी यह नहीं देखे है तो फिर हम क्यों विश्वास करें। हम -सब पृथ्वी पर जन्म लिये है, तो क्यों न इसे ही सुख स्वर्ग बनायें। अर्थात् बच्चन ने आज के मनुष्य से स्वर्ग का प्रलोभन त्याग कर पृथ्वी को ही स्वर्ग बनाने की अपेक्षा की है |

बच्चन ने 'वसुदैवकुटुम्बकम्' की कामना रखी है। यह उनके प्रगतिशील चिन्तन का श्रेष्ठ उदाहरण है कि उनकी लालसा सम्पूर्ण विश्व से अन्तद्र्वन्द्व समाप्त कर एक स्वर में गान की है। वे चाहते है कि समस्त संसार में ऐक्य हो और सभी आपसी मतभेद भूलाकर एकता के सूत्र में बँध जायें |

बच्चन सामाजिक संदर्भो में युगद्रष्टा कवि हैं। समाज के व्यापक जीवन यथार्थ से उन्होंने गहरा साक्षात्कार किया है। उन्होंने समाज को राष्ट्र विकास के सन्दर्भ में देखा है।कवि ने ईश्वर से प्रार्थना कि है कि इस देश में चैंसठ कलाओं का विकास कर देना मगर सिद्ध करने की कला का विकास मत करना।

क्योंकि कवि को ज्ञात है कि इस देश में, इस खोटे समय में कुछ भी सिद्ध करना बहुत आसान होगा, जहाँ भ्रष्टाचार, अनैतिकता और अन्याय बढ़ रहा है वही संस्कारों का हनन हो रहा है अतः कवि की सोच प्रगतिशील है |

बच्चन जी ने सामाजिक जीवन में व्याप्त विसंगतियों, विषमताओं, रूढियों, अंधविश्वास, मान्यताओं, पुरानी परम्पराओं, रीति-रिवाजों और हर उस अन्यायी शक्ति के खिलाफ विरोध और विद्रोह की आवाज बुलन्द की है। जिसने मानवता को पग-पग पर आहत किया है, क्षत-विक्षत किया है और मानव के सपने को कुचला है, रौंदा है। बच्चन जी ने बीसवीं सदी की पीढ़ी को नामर्द, कमजोर, नपुंसक कहा है। उनका मानना है कि आज की पीढ़ी गुलामी करने, दबकर रहने के खिलाफ है।

धर्म, पाखण्ड और जाति भेद की ओर व्यंग्य करके कवि समाज में मंगल भावना फैले ऐसी कामना करता है । उनका मानना है कि मंदिर-मदिरालय दोंनो स्थान समान है क्योंकि दोंनो ही जगह मनुष्य आत्मशान्ति और मन बहलाने के लिए जाता है। अगर मदिरा पीना पाप कर्म है और मस्जिद में नमाज पढ़ना पुण्य कर्म है, तो संसार मुझे बताये की कब मस्जिद पर सोने की बरसात हुई है और कब मदिरालय पर गाज गिरी है? मंदिर-मस्जिद दोनों भय और भ्रान्ति से भरे हुए संसार का मन बहलाते है और मदिरालय भी यही कार्य करता है।

सुनकर आया हूँ मन्दिर में रटते हरिजन थे राम-राम,
पर अपनी इस मधुशाला में जपते मतवाले जाम-जाम;
पण्डित मदिरालय से रूठा, मैं कैसे मन्दिर से रूठँ,
मैं फर्क बाहरी देखूँ; मुझको मस्ती से महज काम।
भय-भ्रान्ती-भरे जग में दोनों मन को बहलाने के अभियान।
मिट्टी का तन, मस्ती का मन, क्षण भर जीवन-मेरा परिचय।10

बच्चन ने अपने काव्य में घमण्ड़ी, अहंवादी और ढ़ोगी प्रवृत्ति के मनुष्यों पर कटाक्ष किया हैं। जो अहं की प्रवृत्ति से गरीब और अपने से निम्नतम लोगों पर घृणास्पद दृष्टि रखता है।

कवि ने वर्तमान युवा वर्ग को चेताया है कि जीवन पथ पर मधुबाला का राग या अंगूरों का बाग नही मिलेगा वरन् अनेक विषमताओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा अतः अपनी हिम्मत और आत्मविश्वास को दृढ करके आगे बढ़ो जिससे लोहे के चने अर्थात् जीवन के संकटों पर आसानी से विजय प्राप्त करलों। बच्चन का युवा वर्ग को आह्वान भावी जीवन के प्रति प्रगतिशील चिन्तन का परिचायक हैं |

कवि मनुष्य जीवन पर लगे समाज के विभिन्न बंधनों के खिलाफ हैं। उनका मानना है कि नश्वर जीवन कितना चलेगा फिर उस पर क्यों विभिन्न बंधन लगाये गये। मानवता पर लगे बन्धन से उसे मुक्त किया जाना चाहिए-

लघु, मानव का कितना जीवन,
फिर क्यों उस पर इतना बन्धन; 13

हमारा देश भारत सदैव अपने आदर्शों पर चला है। यदि कभी भटक भी गया है तो वह समय पर संभल गया है। उसने अपने स्वाभिमान को चोट नहीं पहुचने दी हैं। बच्चन अपने जीवन में कई बार टूटे हैं किन्तु किसी के सामने झुके नहीं है, राम के आदर्ष उनके सम्मुख जो थे। उन्होंने आज के मनुष्यों को सब सम्बलों से विरक्त करके भी साहस और आत्मविश्वास की प्रेरणा दी है।

नैतिक आदर्शवाद ने मनुष्य के जीवन पर व्यापक प्रभाव ड़ाला है। वस्तुतः किसी भी संस्कृति की आत्मा है। मनुष्य अपने प्राणमय कोष की एषणाओं ओर प्रेरणाओं से संतुष्ट नहीं रह पाता। उसका मन चंचल और अस्थिर होता है। बच्चन ने प्रगतिशील चिन्तन का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत किया कि मनुष्य ही मानवता का विस्तृत हृदय और स्वच्छ मुखर है।

सामाजिक और आर्थिक-वैशम्य के जिस क्रोड़ में बच्चन का विकास हुआ उसमें स्वाभाविक रूप से विद्रोह का उत्स फूटता हुआ दिखाई देता हैं। विभिन्न असफलताओं और परिस्थितियों द्वारा झकझोर देने पर भी वह मनुष्य को प्रगतिशील प्रेरणा देते हैं। मनुष्य जीवन में हार-जीत दो अनिवार्य पहलु हैं किन्तु जीवन समर में हार कर जीतना ही श्रेष्ठ जीत है। बच्चन की निम्न पंक्तियों में प्रगतिशील चिन्तन द्रष्टव्य हैं-

सुख जहाँ विजित होने में है,
अपना सब कुछ खोने में है,
मैं हारा भी जीता ही हूँ जग के ऐसे समरांगण में। 16

स्वच्छन्दतावाद की सभी प्रवृत्तियों का बच्चन के काव्य में स्वच्छन्दत्ता से प्रयोग हुआ है। कवि ने जगत की परवाह नहीं करते हुए अपराजेय और क्रियाशील बने रहने का सन्देश स्वच्छन्द रूप से अपनी पंक्तियों में प्रस्तुत किया है |

बच्चन ने कर्म और श्रम को महत्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार आराम हराम है। मनुष्य का भाग्य स्वयं उसके कर्म बनाता है। कर्मण्ठ मनुष्य हमेशा प्रगति पथ पर चलता है। कर्म प्रधान है। बच्चन समय के साथ चलने पर जोर देते है। मनुष्य अपना विकास तभी कर सकता है जब समय का मूल्य जानता है। क्योंकि जो मनुष्य समय बरबाद करता है, समय उसे बरबाद कर देता है। अतः महत्व इस बात का नही की जीवन में कौन आगे और कौन पीछे है बल्कि इसका है कि समय के साथ निरन्तर कौन कदम बढ़ा रहा है |

कवि ने आज के मनुष्य से आह्वान किया है कि संसार के परिवर्तन और बदलाव को देखो। आप अपनी बुद्धि से कुछ नही समझ पा रहे हो, तो जो ठोकर तुम खा चुके हो उस से तो शिक्षा लों। वर्तमान समय में भी तुम्हारी आवश्यकताओं की पूर्ति आधुनिक सरकार नहीं कर रही है तो अपनी सन्तोषी प्रवृत्ति को त्याग कर अपने अधिकारों के लिए जाग्रत हो कर लड़ो। बच्चन नवीन सृजन के प्रति सजग रहने की आकांक्षा रखते है। कवि की चाहत है कि उसकी बुद्धि नित नये की ओर उदार रहे तथा मन सदा नवीन की ओर आकृषित रहे क्योंकि नवीन में असीम सम्भावनाएँ और सर्वमान्य प्रत्यक्ष प्रमाण विधमान रहता है। प्रलय और नाश की स्थिति स्थायी रूप से स्वीकार्य कभी नहीं हो सकेगी। यह बच्चन का प्रगतिशील चिन्तन ही है कि उन्होंने ध्वंस के साथ ही नव-निर्माण का गीत गाया है।

कवि ने बैर भाव भुलाकर मित्रता की पहल की है। उन्होंने लिखा है कि जो उसके हितैषी है उन्हें भी मेरा स्नेह बराबर प्राप्त हो और जो मेरे विरोधी है उन्हें भी मेरा स्नेह बराबर प्राप्त हो। क्योंकि फूल और शूल के साथ मतभेद करने से वृक्ष की निंदा होगी अतः मेरे लिए सभी मनुष्य बराबर है।

संक्षेप में कह सकते है कि कवि हरिवंषराय 'बच्चन' ने अपने कविताओं के माध्यम से साजीवन की व्रिदृपताओं, विषंगतियों, सामाजिक एंव सांस्कृतिक मूल्य विघटन, का यथार्थ रूप् से चित्रण कर विद्रोह व्यक्त किया साथ-साथ जनसमाज एवे देष में मानवता, देष के एकता, कर्मवादी, श्रमवादी एवं नवीन नैतिक मूल्यों को अपनाकर वसुधैव कुटुम्बम् एवं विश्व कल्याण की कामना का प्रसार किया जो कि उनके प्रगतिशील चिन्तन को व्यक्त करता है।

❁

भगोरिया पर्व

संजय वर्मा 'दृष्टि'

125, शहीद भगत सिंग मार्ग, मनावर (धार)

आदिवासी बाहुल्य क्षेत्रो मे भगोरिया पर्व आते ही वासन्तिक छटा मन को मोह लेती है वही इस पर्व की पूर्व तैयारी से रियाज करने से ढोल, बांसुरी की धुनों की मिठास कानों मे मिश्री घोल देती है व दिलों मे उमंगो की कशिश पैदा करती है | व्यापारी अपने-अपने तरीके से खाने की चीजे गुड की जलेबी, भजिये, खारिये (सेव) पान, कुल्फी, केले, ताड़ी बेचते, झूले वाले, गोदना वाले इंतजाम करने मे जुट जाते है| जिप, छोटे ट्रक, दुपहिया वाहन, बेलगाडी पर दूरस्थ गाँव के रहने वाले समीप भरे जाने वाले हाट मे सज-धज के जाते है | कई नौजवान युवक-युवतियाँ झुंड बनाकर पैदल भी जाते है | ताड़ी के पेड़ पर लटकी मटकिया जिस मे ताड़ी एकत्रित की जाती है बेहद खुबसूरत नजर आती है| खजूर, आम आदि के हरे भरे पेड़ ऐसे लगते है मानों ये भगोरिया मे जाने वालो का अभिवादन कर रहे हो और प्रेम यहाँ प्रस्फुटित होकर संग चलने लगा हो | वेसे बड़े-बूढ़े सभी इस पर्व का आनद लेते है |

भगोरिया हाट मे प्रशासन व्यवस्था भी रहती है | हाट मे जगह - जगह भगोरिया नृत्य मे ढोल की थाप से धुन- "धिचांग पोई पोई.." जेसी सुनाई देती और बांसुरी, घुंघरुओं की ध्वनियाँ दृश्य मे एक चुम्बकीय माहोल पैदा करती है | बड़ा ढोल विशेष रूप से तेयार किया जाता है जिसमे एक तरफ आटा लगाया जाता है | ढोल वजन मे काफी भारी होता है जिसे इसे बजाने में महारत हासिल हो वो नृत्य घेरे के मध्य मे खड़ा हो कर इसे बजाता है | एक रंग की वेश भूषा, चांदी के नख से शिख तक पहने जाने वाले आभूषण ,घुंघरू पावों मे हाथों मे रंगीन रुमाल लिए गोल घेरा बनाकर बेहद सुन्दर नृत्य करते है | कई जगहों पर ताड़ी की बिक्री होती है जो की स्वास्थ्य वर्धक पेय है किन्तु पैसों की लालच मे मिलावट कर बेचीं जाने लगी है | युवक -युवतियाँ झूलों पर, नृत्यों से, पोशाको से एक दुसरे के प्रति आकर्षण पैदा कर पसंद कर भगाकर ले जाने वाली प्रथा को जीवंत करते है| गालो पर गुलाल लगाकर, पान खिलाकर, वर्तमान में मोबाईल की फरमाइश की जा कर भी अपनी पसंदगी को चयन मे जोड़ते है | प्रेम, पृक्रति, संस्कृति, उमंग उत्साह से भरा नृत्य का मिश्रण भगोरिया की गरिमा मे वासन्तिक छटा का ऐसा रंग भरता है की देश ही नहीं अपितु विदेशों से भी इस पर्व को देखने विदेशी लोग आते है इनके रहने और ठहरने के लिए प्रशाशन द्वारा केम्प की व्यवस्था की जाने लगी है |

लोक संस्कृति के पारम्परिक गीतों को डीजे साउंड पर बजाया जाकर माहोल मे एक जोश का वातावरण भरा जाने लगा है|

पृक्रति और संस्कृति का अधभुत संगम हरे भरे पेड़ो से नेखर जाता है | जंगलो के कम होने से व गावों के विस्तृत होने से कई क्षेत्रो मे कम्पौंड के अन्दर ही नृत्य करवाया जाकर भगोरिया पर्व मनाया जाने लगा है जो की एक बंधेपन जेसा प्रतीत होता है और युवतियों की संख्या भी कम होती है | जिसके कारण पसंद कर भगाकर ले जाने वाली प्रथा मे कमी होती दिखाई देने लगी है | भगोरिया पर्व पर उपयुक्त स्थान मे व्यापारियों द्वारा ज्यादा से ज्यादा संख्या मे खाने पीने की चीजो की दुकान लगाना, छाँव की बेहतर व्यवस्था, पीने के पानी की सुविधा, झूले आदि की अनिवार्यता होनी चाहिए ताकि मनोरजन के साथ लोक संस्कृति का आनंद सभी ले सके |

❁

अनोखी राखी

पूनम शुक्ला

50 डी ,अपना इन्कलेव ,रेलवे रोड,गुड़गाँव - 122001

तीन दिनों बाद ही रक्षाबंधन का त्योहार था । मेरे मन में हर्षोल्लास भरा हुआ था। आखिर रक्षाबंधन है ही बहनों के लिए एक खास पर्व जिस दिन वे अपने भाइयों पर अपना स्नेह न्योछावर कर देती हैं । और फिर मेरे तो तीन अपने भाई और छ: चचेरे यानि की कुल मिला कर नौ । पर साथ में दो ही रहते थे,बाकी सब दूर- दूर । सबके पास राखी डाक द्वारा भेज दी गई

थी । तब मैं कक्षा सातवीं में पढ़ती थी । जब भी कक्षा में खाली पीरियड मिलता, हम सभी सहपाठिनें अपनी-अपनी राखी की तैयारियों की बातें एक दूसरे से बताने लगतीं । किसी का भाई दूसरे शहर से उस दिन आने वाला होता तो कोई बहन अपने भाई के पास जाने वाली होती । किसी ने चटकीली रंगबिरंगी बड़ी राखी अपने भाई के लिए पसंद की होती तो किसी ने छोटी मोरपंख वाली । किसी को रेशम का धागा पसंद होता तो किसी को गोटे सितारे । किसी नें रक्षाबंधन के लिए नई फ्राक बनवा रखी थी तो किसी ने लहँगा । हम सभी अपनी-अपनी बातें एक दूसरे से शेयर करते और फिर कुछ नया आइडिया भी पनप आता ।आइडिया मिलते ही हम अपने कार्यक्रम में थोड़ी तबदीली भी कर लेते ।

आज की शुरूआत भी रोज की तरह ही हुई, एटेन्डेन्स, प्रार्थना और फिर पहले पीरियड की घन्टी । गणित के मास्टर जी का पहला पीरियड था क्योंकि वही हमारे क्लास टीचर थे ।पर आज उनकी बातों में कुछ नयापन था। पुराने फार्मूले और जोड़ घटान से बिल्कुल अलग । आज उनपर भी रक्षाबंधन का ही असर था । उन्होंने कुछ देर तक रक्षाबंधन पर अपने विचार रखे जो हम सभी तल्लीनता से सुनते रहे और फिर उन्होंने हम सभी के सामने लड़कियों द्वारा लड़कों को राखी बाँधने का प्रस्ताव रखा जो हम सभी को बहुत पसंद आया । सर ने हमलोगों को एक लिस्ट बनाने के लिए भी कहा जिसमें ये स्पष्ट रूप से लिखा हो कि राखी किस लड़के को किस लड़की द्वारा बाँधी जाएगी । अब तो पूरी कक्षा का माहौल ही बदल गया । बहनें अपने भाईयों का और भाई अपने बहनों का चुनाव करने लगे । विद्यालय के बाहर ही एक राखी की दुकान भी थी । इंटरवल में हम अपना टिफिन जल्दी खाकर, झुण्ड बनाकर राखियाँ खरीदने पहुँच जातीं । लड़के भी आपस में बातें करते कि राखी बँधने पर वो क्या उपहार देंगे । सभी ने अपने-अपने अनुसार चुनाव किया और लिस्ट बननी शुरू हो गई । किसी ने अपना भाई पारिवारिक संबंधों के कारण चुना तो किसी ने रोज़ाना साथ आने-जाने के कारण । किसी ने प्रग़ाढ़ मित्रता के कारण तो किसी ने आकर्षक व्यक्तित्व के कारण । कक्षा में दो-चार ऐसे भी थे जिन्होंने राखी बाँधने और बँधवाने से ही मना कर दिया । जिसकी जैसी सोच रही वैसा ही चुनाव रहा पर मैं आज ये सोचकर हैरान हूँ कि मेरा चुनाव कितना अलग था । हाँ मैंने अपनी कक्षा में चार लड़कों को अपना भाई चुना जिसमें एक मुसलमान, एक ईसाई,एक हिन्दू और एक सिख था । मेरी लिस्ट बिल्कुल अलग थी । मेरे भाई निराले थे । मैंने भी उनके लिए चार नई राखियाँ खरीदीं, अपनी सहेलियों को अपने चुनाव के बारे में बताया, शायद किसी ने टोका भी कि मुसलमान और ईसाई को क्या राखी बाँधनी है लेकिन मेरा चुनाव अडिग था । रक्षाबंधन का दिन भी आ गया । संयोग की बात ये थी कि उस दिन 15 अगस्त यानि स्वतंत्रता दिवस भी था । मैंदान में प्राचार्य महोदय नें भारत का तिरंगा फहराया । हम सभी ने मार्चपास्ट किया । एकता के गीत गाए गए, लड्डू बँटे और फिर मैंने अपने चारों भाइयों को राखी बाँधी । मेरे भीतर जो प्रसन्नता की लहरें थीं उसे मैं बयान नहीं कर सकती । असली एकता व सौहार्द्य का दिवस तो मैंने मनाया था ।

❊

6, Larksmere Court, Markham, Ontario,
L3R 3R1
Phone : (905) 475-7165, Fax : (905) 475-8667
E-mail : hindichetna@yahoo.ca

समाचार

गुजरात के चित्रकार श्री अशोक खांट के 'शब्दरंग' चित्रों का प्रदर्शन

गुजरात के जानेमाने रियालिस्टिक चित्रकार श्री अशोक खांट ने दिल्ली स्थित कवयित्री रेणु गुप्ता 'रैना' की कविताओं पर आधारित चित्रों का विशेष प्रयोग करते हुए अहमदाबाद, मुम्बई और दिल्ली में अपने शो किए | इस चित्र प्रदर्शन में कुल 30 चित्रों को सम्मिलित किया गया और प्रदर्शन को 'शब्दरंग' नाम दिया गया.

'शब्दरंग' का प्रथम चित्र प्रदर्शन अहमदाबाद में हुआ, जिसमें गुजराती फिल्मों के अभिनय सम्राट श्री उपेन्द्र त्रिवेदी ने उदघाटन किया | उनके साथ अन्य उपस्थित मेहमानों में

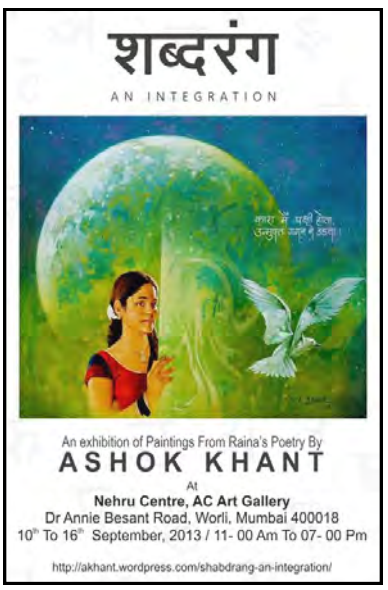

गुजराती लोक-गायक श्री प्रफुल्ल दवे, फिल्म-टीवी कलाकार श्री मित्रेश वर्मा, कलेक्टर श्री कालरिया और 'विश्वगाथा' के संपादक श्री पंकज त्रिवेदी ने भी अपने वक्तव्य दिए | राज्य के चित्रकार, साहित्यकार, नाट्यकार, फोटोग्राफर और पत्रकारों के साथ लोक साहित्यकार श्री जोरावरसिंह जादव, वैशाली गडुमवार और उभरते चित्रकार भी थे कार्यक्रम का संचालन चित्रकार श्री कनु पटेलने किया था | श्री अशोक खांट को इसी साल वर्ष– 2013 का 'राजीव गांधी एक्सलेंसी अवार्ड' भी दिया गया है | उन्हें आई.सी.बी.इंक कंपनी, अमरीका के द्वारा विश्व के 63 रियालिस्टिक चित्रकारों की सूचि में भी शामिल किया गया है | श्री खांट ने हमारी पत्रिका के लिए मुखपृष्ठ भी बनाएँ हैं , गौरवपूर्ण बात है | 'विश्वगाथा' परिवार की ओर से श्री अशोक खांट को अशेष शुभकामनाएँ |

❊

संपर्क : अशोक खांट askhreal@gmail.com

(अटूट रिश्ते (कहानी) पेज नं. 55 से आगे...)

अलका के मम्मी पापा भी उनका सहारा न बन सके | तब दुखी मन से उन्होंने किसी वृद्धाश्रम की शरण लेनी चाही थी| इसी बीच गाँव से बिशन चाचा किसी काम से शहर आये तो उनसे मिलने पहुँचे.अपने साहब की हालत देख बहुत दुखी हुए| मीता को फोन किया |मीता दूसरे दिन ही वहां पहुँच गई| ताऊ जी ने सारी संपत्तिसे गरीब बच्चों की शिक्षा के लिए ट्रस्ट बना दिया | मीता ने उन्हें अपने साथ रहने की इतनी जिद की पर वे तैयार ही नहीं हुए | बिशन चाचा और चाची की भी एक न सुनी ...बहुत जिद के बाद ही वे राज़ी हो पाए | तब से ताऊ जी नए परिवार में हैं | यह घर मीता का है | मीता को बंगला मिला हुआ है | वह वहीँ रहती है | पर हर दिन एक बार वह यहाँ अवश्य आती है वह औरत चंपा है वही ताऊ जी के घर की देखभाल करती है | उनके भोजन- दवाई तथा उनसे मिलने आने वालों का वही ध्यान रखती है | उसे नौकरानी भी नहीं कहा जा सकता वह बेटी की तरह ही उनका सम्मान करती है | मैडम से वह उनके बारे में जान चुकी है... वे मानव रूप में देवता हैं | चंपा अकेली दुखिया थी जिसे मीता ने सहारा दिया था | मीता के माँ बापू भी आज उनसे मिलने ही आये हैं | यहाँ वह शांति पूर्वक रहते हैं अकेले भी नहीं हैं और दूसरों के आसरे भी नहीं हैं |

ताऊ जी ने अलका को प्यार से गले लगाया और सभी की कुशल मंगल पूछने लगे लेकिन अलका का मन ग्लानि से भर उठा था ..मीता को उसने क्या समझा और वह क्या थी? अपने घर के लोगोंकी सोच पर पर उसे दया आ रही थी | आश्चर्य मिश्रित ख़ुशी और आत्मिक ग्लानि के बीच वह जब घर लौट रही थी तो मन ब्याकुल सा था ...कितने अजीब होते हैं ये रिश्ते | कहीं खून भी बदरंग हो जाता है तो कहीं प्यार और विश्वास से जुड़ जाते हैं अटूट रिश्ते |

❊

मानुषी का नया 'उन्मेष' और उनकी सृजनशीलता, उनकी शैली और बिम्बों को फोडकर उनमें से अविष्कार की एक नहीं सोच का तेजोमय स्फूट ! 'उन्मेष' की रचनाओं को पढकर लगता नहीं है कि यह कवयित्री का प्रथम संग्रह है | अपने संग्रह में गीत, गज़लें, मुक्तछंद, हाइकु, क्षणिकाएं और दोहे को समाविष्ट करते हुए इन विधाओं के प्रति अपनी अभिव्यक्ति की नई दिशाएं खोजने का प्रयास सराहनीय है | विशेषकर गीतों के प्रति रूचि और सहजता पाठक पर प्रभाव डालती है |

न जाने अपने छूटे हुए उस घर की कई स्मृतियों में खोई हुई कवयित्री चंद अल्फाज़ में अपने ममत्व की गाथा कह देती है, अंतरमन की व्यथा को अति सरलता से गढना अपनी क्षमता को साबित करती है | मानुषी में संवेदना तो है ही, मगर रचनाकार का गाम्भीर्य और उत्तरदायित्व की सभानाता उनके 'उन्मेष' को पंख लगाता है और अब उनके लिए पूरे आसमान में उड़ने की संभावनाएं दिखाई पडती हैं | मानुषी को शुभकामनाएँ | **- पंकज त्रिवेदी**

अंजुमन प्रकाशन, 942 आर्य कन्या चौराहा, मुठ्ठीगंज, इलाहाबाद- 211003

विश्वगाथा का पिछला अंक - प्रेम विशेषांक

हिन्दी साहित्य अकादमी का अवार्ड

निबंध संग्रह 'झरोखा' (२०१०) के लिए हिन्दी साहित्य अकादमी का अवार्ड प्राप्त करते समय श्री पंकज त्रिवेदी, माननीय श्री भाग्येश झा (सचिव एवं साहित्यकार), माननीय श्री रमणभाई वोरा (मंत्रीश्री, युवक सेवा सांस्कृतिक विभाग, गुजरात सरकार, गांधीनगर) और सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री धीरु परीख (अध्यक्ष, गुजराती साहित्य परिषद, अहमदाबाद).

नये साल की शुभ कामनाएं

अंजुमन प्रकाशन

इलाहाबाद

नई पुस्तकें (2013)

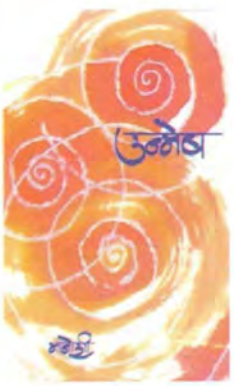

उन्मेष
मानोशी (कनाडा)

नायाब शे'र
साजिद ख़ान (साउदी अरब)

बंजारन
कुंती मुखर्जी (मारीशस)

हौसलों के पंख
कल्पना रामानी (मुम्बई)

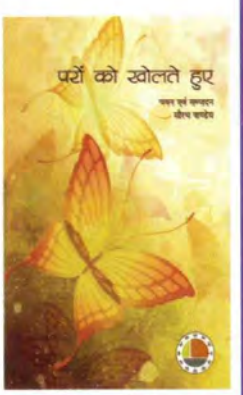

परों को खोलते हुए
सौरभ पाण्डेय (इलाहाबाद)

ज़र्रे ज़र्रे में वो है
आशा पाण्डेय ओझा (जालौर)

सच का परचम
अरुण अभिनव (वाराणसी)

इकड़ियाँ जेबी से
सौरभ पाण्डेय (इलाहाबाद)

उधेड़बुन
राहुल देव (कानपुर)

बूँद बूँद गंगाजल हूँ
भावना तिवारी (कानपुर)

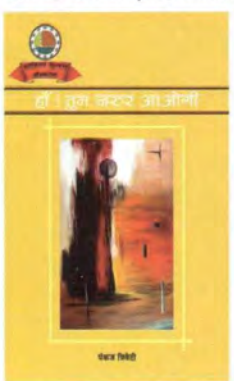

हाँ ! तुम जरुर आओगी
पंकज त्रिवेदी (गुजरात)

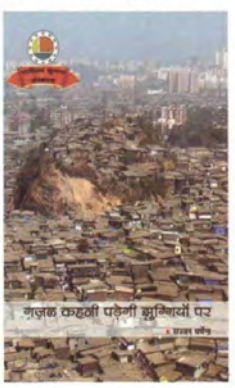

ग़ज़ल कहनी पड़ेगी झुग्गियों पर
सज्जन धर्मेन्द्र (हिमाचल प्रदेश)

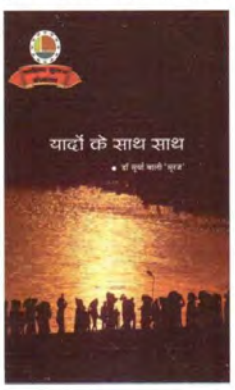

यादों का सफ़र
डॉ.सूर्या बाली (भोपाल)

साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशन के लिए सम्पर्क करें।

www.anjumanpublication.com

mo. - 09453004398, 09235407119